वार्षिक रु. १६०, मूल्य रु. १७

ISSN 2582-0656

विवेक ज्योति

वर्ष ५९ अंक ९
सितम्बर २०२१

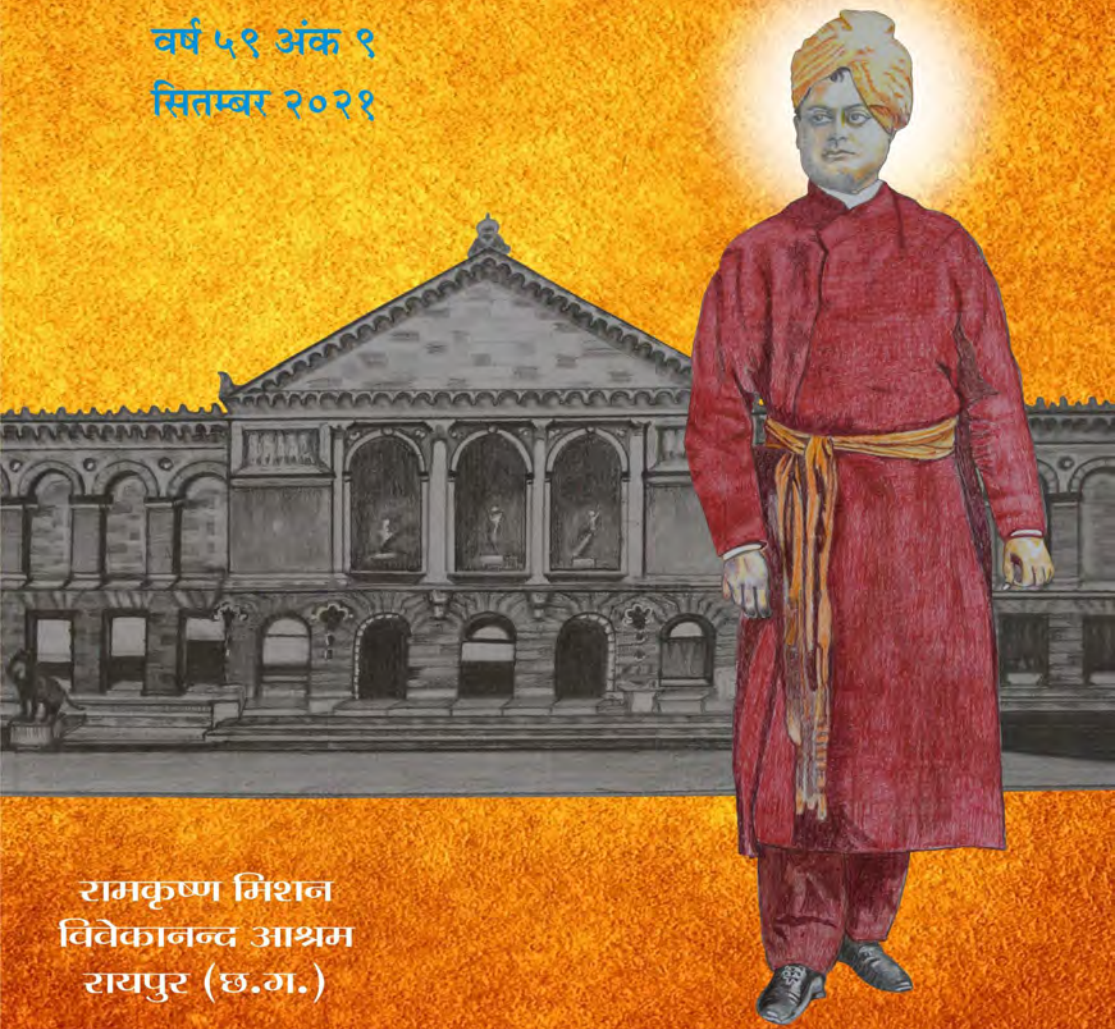

रामकृष्ण मिशन
विवेकानन्द आश्रम
रायपुर (छ.ग.)

।। आत्मनो मोक्षार्थं जगद्धिताय च ।।

विवेक-ज्योति

श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द भावधारा से अनुप्राणित

हिन्दी मासिक

सितम्बर २०२१; भाद्र, सम्वत् २०७८

प्रबन्ध सम्पादक
स्वामी सत्यरूपानन्द

सम्पादक
स्वामी प्रपत्त्यानन्द

सह-सम्पादक
स्वामी पद्माक्षानन्द

व्यवस्थापक
स्वामी स्थिरानन्द

वर्ष ५९
अंक ९

वार्षिक १६०/– **एक प्रति १७/–**

५ वर्षों के लिये – रु. ८००/–
१० वर्षों के लिए – रु. १६००/–
(सदस्यता-शुल्क की राशि इलेक्ट्रॉनिक मनिआर्डर से भेजें अथवा **ऐट पार** चेक – 'रामकृष्ण मिशन' (रायपुर, छत्तीसगढ़) के नाम बनवाएँ
अथवा निम्नलिखित खाते में सीधे जमा कराएँ :
सेन्ट्रल बैंक ऑफ इन्डिया, **अकाउन्ट नम्बर** : 1385116124
IFSC CODE : CBIN0280804
कृपया इसकी सूचना हमें तुरन्त केवल ई-मेल, फोन, एस.एम.एस., व्हाट्सएप अथवा स्कैन द्वारा ही अपना नाम, पूरा पता, **पिन कोड** एवं फोन नम्बर के साथ भेजें।
विदेशों में – वार्षिक ५० यू. एस. डॉलर;
५ वर्षों के लिए २५० यू. एस. डॉलर (हवाई डाक से)
संस्थाओं के लिये –
वार्षिक रु. २००/– ; ५ वर्षों के लिये – रु. १०००/–

रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम,
रायपुर – ४९२००१ (छ.ग.)
विवेक-ज्योति दूरभाष : ०९८२७१ ९७५३५
ई-मेल : vivekjyotirkmraipur@gmail.com
वेबसाइट : www.rkmraipur.org
आश्रम : ०७७१ – २२२५२६९, ४०३६९५९
(समय : ८.३० से ११.३० और ३ से ६ बजे तक)
रविवार एवं अन्य अवकाश को छोड़कर

अनुक्रमणिका

१. विवेकानन्द-वन्दना ३८९
२. पुरखों की थाती (संस्कृत सुभाषित) ३८९
३. सम्पादकीय : साक्षर होकर सुशिक्षित और ज्ञानी बनें ३९०
४. भारत की नारियाँ (स्वामी विवेकानन्द) ३९२
५. श्रीरामकृष्ण, श्रीमाँ सारदा और अन्तरंग पार्षदों द्वारा दुर्गापूजा (स्वामी तन्निष्ठानन्द) ३९४
६. आध्यात्मिक जिज्ञासा (६९) (स्वामी भूतेशानन्द) ४०३
७. (भजन एवं कविता) परम प्रेममय ओ परमेश्वर ! (भानुदत्त त्रिपाठी 'मधुरेश'), तेरे हाथों सौप दिया... (आनन्द कुमार पौराणिक), ठाकुर-महिमा (डॉ. ओमप्रकाश वर्मा), जय शिव शंकर (दिनेश चन्द्र अवस्थी) ४०५
८. रामराज्य का स्वरूप (३/४) (पं. रामकिंकर उपाध्याय) ४०६
९. श्रीरामकृष्ण-गीता (३) (स्वामी पूर्णानन्द) ४०८
१०. (बच्चों का आँगन) साहस और बहादुरी (स्वामी पद्माक्षानन्द) ४०९
११. (युवा प्रांगण) एक दृष्टि हमारी प्राचीन शिक्षा-व्यवस्था पर भी दें (स्वामी अलोकानन्द) ४१०
१२. शिकागो धर्म-महासम्मेलन का प्रभाव (स्वामी गुणदानन्द) ४१२
१३. सारगाछी की स्मृतियाँ (१०७) (स्वामी सुहितानन्द) ४१६

ISSN 2582-0656

१४. प्रश्नोपनिषद् (१६)
(श्रीशंकराचार्य) ४१८
१५. वरिष्ठ साधुओं की स्मृतियाँ (२)
(स्वामी ब्रह्मेशानन्द) ४१९
१६. गीतातत्त्व-चिन्तन – (३) (दशम अध्याय)
(स्वामी आत्मानन्द) ४२२
१७. वर्तमान में जिओ, कुसंग से बचो और भगवान का भजन करो
(स्वामी सत्यरूपानन्द) ४२६
१८. साधुओं के पावन प्रसंग (३३)
(स्वामी चेतनानन्द) ४२७
१९. काको निन्दौं काको बन्दौं ४२८
२०. समाचार और सूचनाएँ ४३०

आवरण-पृष्ठ के सम्बन्ध में

१८९३ ई. में विश्व धर्म महासम्मेलन आर्ट इन्स्टीट्यूट ऑफ शिकागो, अमेरिका में हुआ था। इसमें स्वामी विवेकानन्द ने भारत के हिन्दू धर्म का प्रतिनिधित्व किया था। उन्होंने इस व्याख्यान के द्वारा विश्व में हिन्दू धर्म का विजय-पताका फहराया था। इसे ही आवरण पृष्ठ पर दर्शाया गया है, जिसका चित्रांकन श्री हरीश जग्गी, रायपुर ने किया है।

सितम्बर माह के जयन्ती और त्यौहार

६	स्वामी अद्वैतानन्द
२२	स्वामी अभेदानन्द
३,१७	एकादशी

विवेक-ज्योति कोष/स्थायी कोष

दान दाता	दान-राशि
श्री घनश्याम खंडेलवाल, देवेन्द्र नगर, रायपुर	५,०००/-
श्री अशुतोष तिवारी, बैंगलोर (कर्नाटक)	२,१००/-
श्री चिन्चोलकर, वेयर हाउस रोड, बिलासपुर	२,०००/-

विवेक-ज्योति के सदस्य बनाएँ

प्रिय मित्र,

युगावतार श्रीरामकृष्ण और विश्ववन्द्य आचार्य स्वामी विवेकानन्द के आविर्भाव से विश्व-इतिहास के एक अभिनव युग का सूत्रपात हुआ है। इससे गत एक शताब्दी से भारतीय जन-जीवन की प्रत्येक विधा में एक नव-जीवन का संचार हो रहा है। राम, कृष्ण, बुद्ध, महावीर, ईसा, मुहम्मद, शंकराचार्य, चैतन्य, नानक तथा रामकृष्ण-विवेकानन्द, आदि कालजयी विभूतियों के जीवन और कार्य अल्पकालिक होते हुए भी शाश्वत प्रभावकारी एवं प्रेरक होते हैं और सहस्रों वर्षों तक कोटि-कोटि लोगों की आस्था, श्रद्धा तथा प्रेरणा के केन्द्र-बिन्दु बनकर विश्व का असीम कल्याण करते हैं। श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द भावधारा नित्य उत्तरोत्तर व्यापक होती हुई, भारतवर्ष सहित सम्पूर्ण विश्ववासियों में परस्पर सद्भाव को अनुप्राणित कर रही है।

भारत की सनातन वैदिक परम्परा, मध्यकालीन हिन्दू संस्कृति तथा श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द के सार्वजनीन उदार सन्देश का प्रचार-प्रसार करने के लिए स्वामीजी के जन्म-शताब्दी वर्ष १९६३ ई. से 'विवेक-ज्योति' पत्रिका को त्रैमासिक रूप में आरम्भ किया गया था, जो १९९९ से मासिक होकर गत ५७ वर्षों से निरन्तर प्रज्वलित रहकर भारत के कोने-कोने में बिखरे अपने सहस्रों प्रेमियों का हृदय आलोकित करती आ रही है। आज के संक्रमण-काल में, जब असहिष्णुता तथा कट्टरतावाद की आसुरी शक्तियाँ सुरसा के समान अपने मुख फैलाए पूरी विश्व-सभ्यता को निगल जाने के लिए आतुर हैं, इस 'युगधर्म' के प्रचार रूपी पुण्यकार्य में सहयोगी होकर इसे घर-घर पहुँचाने में क्या आप भी हमारा हाथ नहीं बँटायेंगे? आपसे हमारा हार्दिक अनुरोध है कि कम-से-कम पाँच नये सदस्यों को 'विवेक-ज्योति' परिवार में सम्मिलित कराने का संकल्प आप अवश्य लें। **– व्यवस्थापक**

विवेक ज्योति के अंक ऑनलाइन पढ़ें : www.rkmraipur.org

क्रमांक	विवेक ज्योति पुस्तकालय योजना के सहयोग कर्ता	प्राप्त-कर्ता (पुस्तकालय/संस्थान
६६४.	श्री गणेश शंकर देशपांडे, पद्मनाभपुर, दुर्ग (छ.ग.)	श्री प्रतीक सप्रे, नेबरहुड सोसायटी, कंदीवली (ई) मुम्बई
६६५.	,, ,,	प्रिंसिपल, सरस्वती शिशु मंदिर, पहान्दा, जि.दुर्ग (छ.ग.)
६६६.	,, ,,	प्रिंसिपल, सरस्वती शिशु मंदिर, कसारीडीह, जि.दुर्ग (छ.ग.)

विवेक ज्योति पुस्तकालय योजना

मनुष्य का उत्थान केवल सकारात्मक विचारों के प्रसार से करना होगा। – स्वामी विवेकानन्द

❖ क्या आप स्वामी विवेकानन्द के स्वप्नों के भारत के नव-निर्माण में योगदान करना चाहते हैं?

❖ क्या आप अनुभव करते हैं कि भारत की कालजयी आध्यात्मिक विरासत, नैतिक आदर्श और महान संस्कृति की युवकों को आवश्यकता है?

✓ यदि हाँ, तो आइए! हमारे भारत के नवनिहाल, भारत के गौरव छात्र-छात्राओं के चारित्रिक-निर्माण और प्रबुद्ध नागरिक बनने में सहायक 'विवेक-ज्योति' को प्रत्येक पुस्तकालय में पहुँचाने में सहयोग कीजिए। आप प्रत्येक पुस्तकालय में पहुँचाने वाली हमारी इस योजना में सहयोग कर अपने राष्ट्र की सेवा कर सकते हैं। आपका प्रयास हमारे इस महान योजना में सहायक होगा, हम आपके सहयोग की प्रतीक्षा कर रहे हैं –

✍ १. 'विवेक-ज्योति' को विशेषकर भारत के स्कूल, कॉलेज, महाविद्यालय और विश्वविद्यालयों द्वारा युवकों में प्रचारित करने का लक्ष्य है।

✍ २. एक पुस्तकालय हेतु मात्र १८००/- रुपये सहयोग करें, इस योजना में सहयोग-कर्ता के द्वारा सूचित किए गए सामुदायिक ग्रन्थालय, या अन्य पुस्तकालय में १० वर्षों तक 'विवेक-ज्योति' प्रेषित की जायेगी।

✍ ३. यदि सहयोग-कर्ता पुस्तकालय का नाम चयन नहीं कर सकते हैं, तो हम उनकी ओर से पुस्तकालय का चयन कर देंगे। दाता का नाम पुस्तकालय के साथ 'विवेक-ज्योति' में प्रकाशित किया जाएगा। यह योजना केवल भारतीय पुस्तकालयों के लिये है।

❖ आप अपनी सहयोग-राशि इलेक्ट्रॉनिक मनीआर्डर या एट पार चेक 'रामकृष्ण मिशन' (रायपुर, छत्तीसगढ़) के नाम से बनवाकर पत्र के साथ निम्नलिखित पते पर भेज दें, जिसमें 'विवेक ज्योति पुस्तकालय योजना' हेतु लिखा हो। आप अपनी सहयोग-राशि निम्नलिखित खाते में सीधे जमा कर सकते हैं। आप इसकी सूचना ई-मेल, फोन और एस. एम.एस. द्वारा अपना नाम, पूरा पता, पिन कोड एवं फोन नम्बर के साथ भेजें।

सेन्ट्रल बैंक ऑफ इन्डिया, अकाउन्ट नम्बर : 1385116124, **IFSC CODE :** CBIN0280804

पता **– व्यवस्थापक, विवेक-ज्योति कार्यालय, रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम,**

रायपुर - 492001 (छत्तीसगढ़), दूरभाष – 09827197535, 0771-2225269, 4036959

ई-मेल : vivekjyotirkmraipur@gmail.com, वेबसाइट : www.rkmraipur.org

विवेक-ज्योति स्थायी कोष

'विवेक-ज्योति' पत्रिका स्वामी विवेकानन्द जी की जन्म-शताब्दी वर्ष के शुभ अवसर पर १९६३ ई. में आरम्भ की गई थी। तबसे यह पत्रिका निरन्तर आध्यात्मिक, सांस्कृतिक और नैतिक विचारों के प्रचार-प्रसार द्वारा समाज को सदाचार, नैतिक और आध्यात्मिक जीवन यापन में सहायता करती चली आ रही है। यह पत्रिका सदा नियमित और सस्ती प्रकाशित होती रहे, इसके लिये विवेक-ज्योति के स्थायी कोष में उदारतापूर्वक दान देकर सहयोग करें। आप अपनी दान-राशि इलेक्ट्रॉनिक मनीआर्डर, ऐट पार चेक या सीधे बैंक के खाते में उपरोक्त निर्देशानुसार भेज सकते हैं। प्राप्त दान-राशि (न्यूनतम रु. १०००/-) सधन्यवाद सूचित की जाएगी और दानदाता का नाम भी पत्रिका में प्रकाशित होगा। रामकृष्ण मिशन को प्रदत्त सभी दान आयकर अधिनियम-१९६१, धारा-८०जी के अन्तर्गत आयकर मुक्त है।

सुदर्शन सोलार...
ऊर्जा अपरंपार !

आधुनिक भारत की बिजली की बढ़ती हुई आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए हमारे पास पर्याप्त मात्रा में सौर ऊर्जा उपलब्ध है। प्राकृतिक रुप से उपलब्ध इस स्त्रोत का प्रतिदिन की अपनी आवश्यकताओं के लिये उपयोग करके, अपने बिजली के बिल में भारी पैमाने पर कटौती कर, हम अपने देश को बिजली के निर्माण में आत्मनिर्भर बनाने में सहायता कर सकते हैं।

इस सुन्दर भूमि को सदा हरी-भरी रखने के लिये अपना साथी

भारत का विश्वसनीय सौर ऊर्जा ब्रांड - 'सुदर्शन सौर'!

सोलर वॉटर हीटर
24 घंटे गरम पानी के लिए

सोलर लाइटिंग्स
ग्रामीण क्षेत्र में घरेलू उपयोग के लिए

सोलार इलेक्ट्रिसिटी सिस्टम
रुफटॉप सोलार
बिजली उत्पन्न करने के लिए

घर, बंगलोज, हॉस्पिटल्स, हॉटेल्स, इंडस्ट्रीज, कमर्शिअल कॉम्प्लेक्स, इन्स्टिट्यूट्स के लिए उपयुक्त

समझदारी की सोच!

३० साल का प्रदीर्घ अनुभव!

आजीवन सेवा — लाखों संतुष्ट ग्राहक — विस्तृत डीलर नेटवर्क

Sudarshan Saur®

SMS: **SOLAR to 58888**

Toll Free
1800 233 4545

www.sudarshansaur.com
E-mail: office@sudarshansaur.com

।। आत्मनो मोक्षार्थं जगद्धिताय च।।

विवेक-ज्योति

श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द भावधारा से अनुप्राणित

हिन्दी मासिक

वर्ष ५९ सितम्बर २०२१ अंक ९

विवेकानन्द-वन्दना

नमामि वन्द्यं विवेकानन्दं धराहृदयारविन्दम्।
विश्वचन्दनं निःस्वनन्दनं ओंकारनादविन्दम्।।
नवधर्मधुरं भवमर्मचरं मथित मनोमकरन्दम्।
प्रेमपथकरं क्षेमशतधरं रणितब्रह्मानन्दम्।।
स्थिरशान्तितरं चिरभ्रान्तिहरं मर्दितद्वेषद्वन्द्वम्।
रोचनऋषिवरं मोचनतत्परं कर्तितभवभयबन्धम्।।
शोकभजनं लोकरंजनं परदोषदर्शनानन्दम्।
गुणिगण-गंजनं मुनिजनखंजनं पूतपारिजातगन्धम्।।

– जो समग्र धरा के कमल, विश्व के चन्दन, निःस्वजनों के आनन्द और प्रणव मन्त्र ओंकार के सार हैं, उन्हीं वन्दनीय विवेकानन्द को प्रणाम करता हूँ। जो नवीन धर्मधारक, भव-मर्मज्ञ, विश्व मन के मधु, प्रेमपथ-प्रदर्शक, मंगलवर्षक और ब्रह्मानन्द के प्रचारक हैं, जो अचल शान्ति, जगत के भ्रमहर्ता, हिंसा-द्वेष-ध्वंसक हैं, जो सुन्दर ऋषिश्रेष्ठ, सबके भव-बन्धन काटकर मुक्ति देने के लिये तत्पर हैं, जो शोकभंजक और लोकरंजक हैं, जो परदोष-अदर्शी हैं, गुणियों के अहंकार-गंजक, मुनियों के मधुर गीतगायक और पावन पारिजात के सौरभ हैं, उन्हीं वन्दनीय विवेकानन्द को मैं प्रणाम करता हूँ।

पुरखों की थाती

अन्नं वै प्राणिनां प्राणा अन्नमोजो बलं सुखम्।।
एतस्मात्कारणात्-सद्भिरन्नदः प्राणदः स्मृतः।।७३४।।

– अन्न में ही सभी जीवों के प्राण बसते हैं, अन्न से ही सुख, बल तथा ओज की प्राप्ति होती है, इसी कारण सज्जन लोग अन्नदाता को प्राणदाता भी मानते हैं। (भविष्य पुराण)

परोपकार-निरताः ये स्वार्थ-सुख-निस्पृहाः।
जगद्धिताय जनिताः साधवस्त्वीदृशा भुवि।।७३५।।

– जो लोग परोपकार में लगे रहते हैं, जो लोग अपने स्वार्थ तथा सुखों के प्रति उदासीन हैं – ऐसे साधु-सज्जन लोग संसार में केवल सबके कल्याण हेतु ही जन्म लेते हैं। (द्वात्रिंशत्पुत्तलिका)

यस्य चित्तं द्रवीभूतं कृपया सर्वजन्तुषु।
तस्य ज्ञानेन मोक्षेण किं जटा भस्मलेपनैः।।७३६।।

– जिस व्यक्ति का हृदय समस्त प्राणियों के प्रति दया से अभिभूत हो जाता है; उसे ज्ञान, मोक्ष, जटाजूट तथा भस्मलेप आदि की कोई आवश्यकता नहीं।

साक्षर होकर सुशिक्षित और ज्ञानी बनें

८ सितम्बर को अन्तर्राष्ट्रीय साक्षरता दिवस है और भारत में ५ सितम्बर को 'शिक्षक दिवस' के रूप में मनाया जाता है। दोनों ही बहुत महत्त्वपूर्ण विषय हैं और नये ढंग से चिन्तन-मनन की अपेक्षा रखते हैं। एक ओर शिक्षा साक्षरता पर निर्भर है, तो दूसरी ओर केवल साक्षरता अपूर्ण है। उसका लक्ष्य मनुष्य को शिक्षित कर उसके जीवन के सर्वांगीण विकास में सहायता करना होना चाहिए। एक सीमा के बाद दोनों ही अपूर्ण हैं। ये मानव के उच्चतम आदर्शों, नैतिक मूल्यों की ओर प्रेरित करें, जिसे हम आध्यात्मिक ज्ञान कह सकते हैं, यह इनका लक्ष्य होना चाहिए। तभी साक्षरता और शिक्षा की सम्पूर्ण सार्थकता होगी। ये कौन-कौन से घटक हैं, आयाम हैं, आइए एक-एक कर इन पर यथामति, यथासम्भव चर्चा करते हैं।

साक्षरता : शिक्षा की पहली ईंट

साक्षरता अभियान सर्वप्रथम यूनेस्को द्वारा १९६६ में चलाया गया था। इसका लक्ष्य था – १९९० तक पूरे विश्व को साक्षर बनाना। कोई भी व्यक्ति अनपढ़ नहीं रहेगा। भारत में यह अभियान व्यापक रूप से चलाया गया। विश्वविद्यालयों में 'राष्ट्रीय सेवा योजना' के स्वयंसेवको को भी साक्षरता बनाने का दायित्व दिया गया था। सरकार ने साक्षरता किट दिये थे, जिसमें पढ़ने की सामग्री पुस्तकें आदि थीं। स्वयंसेवकों को स्वेच्छा से कहीं भी पढ़ाना था। बाद में प्रौढ़ शिक्षा, सर्वशिक्षा अभियान और रात्रि पाठशाला आदि ने भी लोगों को साक्षर बनाने में योगदान दिया।

अब विकासशील भारत में डिजिटल साक्षरता की बात भी चल रही है। भारत सरकार ने 'प्रधानमन्त्री ग्रामीण डिजिटल साक्षरता अभियान' की स्वीकृति दी है, जिसका उद्देश्य समस्त राज्यों, केन्द्र शासित प्रदेशों में, छह करोड़ व्यक्तियों को डिजिटल साक्षर बनाना है।

राष्ट्रीय सेवा योजना के विशेष-शिविर में साक्षरता अभियान पर बोलते हुए संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी के तत्कालीन समन्वयक डॉ. नरेन्द्र नाथ पाण्डेय जी ने बड़ी महत्त्वपूर्ण बात कही थी – ''साक्षर होकर शिक्षित बनें।'' वास्तव में साक्षरता शिक्षित बनने की पहली ईंट है। सोपान नहीं ईंट है। सोपान में कई ईंटें लगती हैं। लेकिन बहुत से लोग हैं, जो पहली ईंट के बाद अगला कदम ही नहीं बढ़ाते, तब क्या केवल साक्षर होना, कुछ पढ़ लिख-लेना उपयोगी नहीं है?

ऐसा नहीं है। एक महिला ने हमें बताया था – अब मैं अपना नाम लिख लेती हूँ। बैंक में मेरा खाता खुल गया है। असम से मेरे पति मेरे खाते में सीधे पैसे भेज देते हैं। यहाँ मेरे हस्ताक्षर से मुझे पैसे मिल जाते हैं, मुझे सहायता के लिये किसी की राह नहीं देखनी पड़ती। नहीं तो पहले बड़ी परेशानी होती थी। एक दूसरी साक्षर महिला ने बताया – मैं अपने बच्चों की किताबें पढ़ लेती हूँ। उन्हें पढ़ाती हूँ। बोतलों और मसालों के डब्बों पर जिस-जिसका नाम है, उसका लेबल चिपका दी हूँ, तो पहचानने में आसानी होती है। एक महिला ने बताया था कि मेरे पति असम में रहते हैं। मैं उनको पत्र लिख लेती हूँ। उनका पत्र आने पर पढ़ लेती हूँ, अब मुझे पत्र लिखवाने-पढ़वाने के लिए किसी को बुलाना नहीं पड़ता है इत्यादि। ऐसी बहुत-सी व्यावहारिक कठिनाइयों का समाधान केवल साक्षर होकर सामान्य पढ़ना-लिखना सीखने से हो जाता है। लेकिन यह शिक्षा का लक्ष्य नहीं, यह आरम्भ मात्र है।

डॉ. सर्वपल्ली राधाकृष्णन्

साक्षर होकर शिक्षित बनें

विश्व के सभी लोग साक्षर बनें, यूनेस्को का यह विचार प्रशंसनीय है। साक्षर होकर शिक्षित बनें, श्री पाण्डेयजी का विचार भी अत्यन्त श्लाघ्य है, क्योंकि समाज शिक्षित होकर स्वावलम्बी बने और राष्ट्र के विकास में सहायता करे। स्वामी विवेकानन्द जी ने शिक्षा पर जोर देते हुए कहा था – ''हमें

ऐसी शिक्षा की आवश्यकता है, जिससे चरित्र-निर्माण हो, मानसिक शक्ति बढ़े, बुद्धि विकसित हो और देश के युवक अपने पैरों पर खड़े होना सीखें।''[१]

''जो शिक्षा सामान्य व्यक्ति को जीवन-संग्राम में समर्थ नहीं बना सकती, जो मनुष्य में चरित्र-बल, परोपकार की भावना और सिंह के समान साहस नहीं ला सकती, वह भी क्या कोई शिक्षा है? शिक्षा वही है, जिसके द्वारा जीवन में अपने पैरों पर खड़ा हुआ जाता है।''[२]

अत: साक्षर बनें। साक्षर होकर शिक्षा-ग्रहण करें, शिक्षित बनें। लेकिन यहीं विराम न लें। तत्पश्चात् क्या?

शिक्षित होकर सुशिक्षित बनें

केवल शिक्षित होना, हमें स्वार्थी, अहंकारी बना सकता है, अत: हमें सुशिक्षित होना है। जैसे रावण शिक्षित तो था, किन्तु सुशिक्षित नहीं था। सकल शास्त्र के ज्ञाता रावण की विद्या-बुद्धि और कार्य से आप सभी परिचित हैं। रावण की शिक्षा लोकदुखकारी है। श्रीराम की शिक्षा लोकसुखकारी है। आज भी समाज में राष्ट्रद्रोही, सामाजिक उत्पीड़न में लगे, बहुत-से लोग पढ़े-लिखे उपाधिधारी मिलते हैं, उनकी शिक्षा को मैं शिक्षा नहीं मानता। ईशान को श्रीरामकृष्ण देव कहते हैं, ''यदि विवेक न हो, तो केवल पाण्डित्य से कुछ नहीं होता, षट्शास्त्र पढ़कर भी कुछ नहीं होता।''[३]

सुशिक्षित व्यक्ति व्यष्टि और समष्टि का हितकारी होता है। ऋषि-मुनियों की विद्या लोकहितकारी है। श्रीराम-लक्ष्मण आदि की शिक्षा ऋषि विश्वामित्र के सान्निध्य में लोकहित हेतु दी जाती है। सुशिक्षित व्यक्ति उस विद्या का उपयोग किसी का अहित किए बिना आत्मविकास एवं लोकहित में करता है। सुशिक्षित व्यक्ति स्वावलम्बी, आत्मविश्वासी, परोपकारी और सदा उत्साही रहता है।

अत: सुशिक्षित होकर अपनी शिक्षा का उपयोग अपने और समाज के सर्वांगीण विकास में लगायें। विश्व में सुख शान्ति हेतु उसका उपयोग करें, तो वह शिक्षा सार्थक होती है और गुरु शिष्य, शिक्षक और शिक्षार्थी दोनों को धन्य करती है।

सुशिक्षित होकर ज्ञानी बनें।

लेकिन सुशिक्षित होना ही अन्तिम लक्ष्य नहीं है , उसके भी आगे हैं – ज्ञानी बनें।

लेकिन केवल सुशिक्षित होने से ही काम नहीं चलेगा। सुशिक्षा सभी समस्याओं का समाधान नहीं है। सुशिक्षा हमें धन-मान-यश, समृद्धि-सम्मान, अस्थायी सुख दे सकती है, लेकिन एक सीमा तक पहुँचने के बाद ये सभी व्यर्थ सिद्ध होते हैं। तब ज्ञान ही व्यक्ति को शाश्वत, सुख और आनन्द प्रदान करता है, तभी उसकी आत्यन्तिक समस्याओं का नाश होता है, त्रिताप से शान्ति मिलती है। अत: व्यक्ति को ज्ञान होना चाहिए। एक बड़ा सुन्दर प्रसंग है श्रीरामकृष्ण और मास्टर महाशय 'श्री म' के द्वितीय मिलन के समय के वार्तालाप का, जिसमें शिक्षित और ज्ञानी का भेद स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है। श्रीरामकृष्ण देव ने मास्टर से पूछा – ''तुम्हारी स्त्री कैसी है? विद्याशक्ति है या अविद्या-शक्ति? मास्टर ने कहा – जी अच्छी है, पर अज्ञान है।''

श्रीरामकृष्ण ने अप्रसन्न होकर कहा – ''और तुम ज्ञानी हो?'' मास्टर नहीं जानते थे, ज्ञान किसे कहते हैं और अज्ञान किसे। अभी तो उनकी धारणा यही है कि कोई लिख-पढ़ ले, तो मानो ज्ञानी हो गया। उनका यह भ्रम दूर तब हुआ, जब उन्होंने सुना कि ईश्वर को जान लेना ज्ञान है और न जानना अज्ञान। श्रीरामकृष्ण की इस बात से कि 'तुम ज्ञानी हो' मास्टर के अहंकार को फिर धक्का लगा।[४]

सामान्यत: पढ़-लिख लेने, बड़ी-बड़ी उपाधियाँ प्राप्त कर लेने से व्यक्ति शिक्षित हो सकता है, लेकिन ज्ञानी नहीं। ज्ञानी वह है, जो ईश्वर को जान लेता है। उपनिषद के ऋषि ने भी उद्घोष किया – जिससे अक्षर परमात्मा का ज्ञान हो, वह परा विद्या है – **अथ परा यया तदक्षरमधिगम्यते**।[५]

ज्ञानप्राप्ति, भगवत्प्राप्ति ही मानव जीवन का उद्देश्य है। इसी उपलब्धि के बाद सभी समस्याओं और दुखों का अवसान हो जाता है। अत: साक्षरता और औपचारिक शिक्षा हमें कुछ क्षणिक सुख-सुविधाएँ, नाम-यश आदि प्रदान कर सकती हैं, किन्तु स्थायी सुख तो ज्ञानी बनने, परमात्मानुभूति करने में ही है।

साक्षरता शिक्षालय-सोपान की प्रथम ईंट है। अत: साक्षर बनकर सुशिक्षित बनें और शिक्षालय के अन्तिम शिखर पर आरोहण कर ज्ञानोपलब्धि का ध्वज लहराकर जीवन को धन्य बनाएँ।

सन्दर्भ सूत्र – १. विवेकानन्द साहित्य ८/२७७, **२.** वही, खण्ड, ६/१०६, **३.** श्रीरामकृष्णवचनामृत (अखण्ड), पृ.३०७), **४.** श्रीरामकृष्णवचनामृत, अखण्ड, पृष्ठ ५,६, **५.** मुण्डक उपनिषद (१/१/५).

भारत की नारियाँ

स्वामी विवेकानन्द

(यह व्याख्यान स्वामी विवेकानन्द जी ने अमेरिका के केम्ब्रिज नगर में १७ दिसम्बर, १८९४ ई. को दिया था। इसे मिस फ्रांसिस विल्लार्ड के स्टेनोग्राफर ने लिपिबद्ध किया। यह स्वामीजी की Complete Works of Swami Vivekananda के नवें खण्ड में प्रकाशित है। इसका हिन्दी अनुवाद 'विवेक-ज्योति' के पूर्व-सम्पादक स्वामी विदेहात्मानन्द जी ने किया है। – सं.)

(गतांक से आगे)

अब हम अपने सिद्धान्तों पर लौटते हैं। करीब सौ वर्ष पूर्व पश्चिम के लोग इस अवस्था पर पहुँचे कि उन्हें अन्य धर्मों के प्रति सहनशीलता दिखानी चाहिए। परन्तु अब हमलोग समझ चुके हैं कि अन्य धर्मों को सहन करना ही पर्याप्त नहीं है, उन्हें (सत्य मानकर) स्वीकार करना होगा। इस प्रकार प्रश्न छोड़ने का नहीं, बल्कि जोड़ने का है। इन समस्त पहलुओं को एकत्र करने पर ही सत्य की प्राप्ति होगी। इन समस्त धर्मों में से प्रत्येक किसी एक पहलू को प्रकट करता है और इन सभी को जोड़ने से पूर्णधर्म की प्राप्ति हो जाती है। ऐसा ही ज्ञान-विज्ञान के क्षेत्र में है – जोड़ना ही नियम है।

हिन्दुओं ने इसी पक्ष का विकास किया है। परन्तु क्या यही पहलू पर्याप्त होगा? माँ की भूमिका को महत्त्व देनेवाली हिन्दू नारी को एक योग्य पत्नी भी बन जाना चाहिए, परन्तु वह अपने मातृभाव का त्याग न करे। यही सर्वोत्तम कर्तव्य होगा। इस प्रकार तुम्हें संसार का एक बेहतर दृष्टिकोण मिल जायेगा। इसकी जगह दौड़ते हुए संसार के विभिन्न देशों में जाना और उनकी निन्दा करते हुए कहना – 'हे जघन्य अभागो, तुम लोग चिरकाल तक नरक की अग्नि में ही जलाने योग्य हो', पूर्णत: अनुचित है।

यदि हम इस स्थिति को स्वीकार कर लें कि परमात्मा की इच्छा से प्रत्येक राष्ट्र मानवीय स्वभाव का एक अंश विकसित कर रहा है और कोई भी राष्ट्र निरर्थक नहीं है। अब तक उन सभी ने ठीक ही किया है; अब उन्हें और भी अच्छा करना चाहिए। (तालियाँ)

हिन्दुओं को अभागे, अविश्वासी या गुलाम कहने की जगह तुम भारत में जाओ और कहो, ''अब तक तुमने बड़ा अच्छा काम किया है, परन्तु इतना ही पर्याप्त नहीं है। तुम्हें और भी बहुत कुछ करना होगा। तुमने नारी में मातृत्व के पहलू का विकास किया है, उसके लिए प्रभु तुम पर कृपा करें। अब तुम उसकी 'पुरुषों की सुयोग्य पत्नी' बनने में सहायता करो।''

इसी प्रकार मुझे लगता है (मैं इसे सद्भावपूर्वक कहता हूँ) कि तुम अपने राष्ट्रीय चरित्र में, हिन्दुओं के स्वभाव में पाया जाने वाला थोड़ा-सा यह मातृभाव भी जोड़ लो। जब पहले दिन मैं स्कूल गया, तो मुझे जीवन में जो पहला श्लोक पढ़ाया गया था, वह था –

मातृवत् परदाराणि परद्रव्याणि लोष्ठवत्।
आत्मवत् सर्वभूतानि वीक्षन्ते धर्मबुद्धय:।।

– जो व्यक्ति सभी नारियों में अपनी माता को देख पाता है, सभी लोगों की धन-सम्पदा को धूल के समान देख पाता है और प्रत्येक जीव के भीतर अपनी स्वयं की आत्मा को देख पाता है, वही सच्चा विद्वान् है।

अब दूसरा भाव है कि पुरुषों के साथ (मिलकर) स्त्रियों का काम करना। ऐसी बात नहीं कि हिन्दुओं के पास ये आदर्श नहीं थे, परन्तु वे उनका विकास नहीं कर सके।

एकमात्र संस्कृत भाषा में हमें ऐसे चार शब्द (दम्पती, जमपती, जायापती, भार्यापती) मिलते हैं, जो पति तथा पत्नी के लिए संयुक्त रूप से द्योतक हैं। केवल हिन्दुओं के विवाह में ही दोनों वचन देते हैं, ''अब तक जो मेरा हृदय था, वह अब तुम्हारा हो जाय।'' केवल उन्हीं के विवाह में पति को ध्रुव-नक्षत्र की ओर देखते हुए, पत्नी के हाथ को स्पर्श करके कहना पड़ता है, ''जैसे आकाश में ध्रुवतारा स्थिर बना रहता है, वैसे ही तुम्हारे प्रति मेरा प्रेम अटल बना रहे।'' इसके बाद पत्नी भी ऐसा ही करती है।

यदि कोई स्त्री पतित होकर गृहत्याग कर देती है, तो भी वह अपने भरण-पोषण के लिए अपने पति पर मुकदमा चला सकती है। हमें अपने देश के सभी अंचलों के स्मृति-ग्रन्थों

में इन भावों के बीज प्राप्त होते हैं, परन्तु हम अपने चरित्र के उस पहलू का विकास नहीं कर सके।

जब हमें किसी के गुण-दोष पर विचार करना हो, तो हमें भावुकता को पूर्णत: त्याग देना चाहिए। हम लोग जानते हैं कि संसार केवल भावुकता से नहीं चलता, बल्कि भावुकता के पीछे और भी कुछ तत्त्व हैं। राष्ट्रों के विकास में आर्थिक कारण, आस-पास की परिस्थितियाँ और कुछ अन्य महत्त्वपूर्ण तत्त्वों का भी योगदान होता है। (अभी मैं उन कारणों पर चर्चा नहीं करूँगा, जिनके द्वारा नारी एक आदर्श पत्नी के रूप में विकसित होती है।)

अत: इस संसार में प्रत्येक राष्ट्र स्वयं को एक विशेष परिस्थिति में पाता है और वह अपनी निजी विशेषताओं को विकसित कर रहा है। अब ऐसे दिन आनेवाले हैं, जब इन सभी विशिष्ट प्रकारों को मिला दिया जायेगा और जब वह निकृष्ट प्रकार की देशभक्ति लुप्त हो जायेगी, जो कहती है, ''सबको लूट कर अपना घर भरो''। उस समय पूरे संसार से एकपक्षीय विकास का भाव चला जायेगा और इनमें से प्रत्येक (राष्ट्र) यह देखेगा कि वह सही रास्ते पर चला है।

चलो अब हम कार्य में लग जाएँ, जगत के सभी राष्ट्रों को आपस में मिला दें और इसके फलस्वरूप एक नवीन राष्ट्र का उदय हो।

क्या मैं अपने एक सुदृढ़ विश्वास की बात कहूँ? जगत में आज सभ्यता का जो विस्तार दीख पड़ता है, उसका अधिकांश भाग मानवता की एक विशेष जाति – आर्यों से ही आया है।

आर्य सभ्यता ने तीन प्रकार के रूप धारण किये – रोमन, यूनानी और हिन्दू। इसकी रोमन शाखा में संगठन, दिग्विजय तथा दृढ़ता का प्राबल्य है, परन्तु उसमें भावुकता, सौन्दर्य प्रियता तथा उच्चतर भावनाओं का अभाव है। इनमें क्रूरता का दोष पाया जाता है। यूनानी लोग मूलत: सौन्दर्य के प्रति उत्साही हैं, परन्तु चंचल-स्वभाव होने के कारण उनमें अनैतिक होने की प्रवृत्ति है। इसकी हिन्दू शाखा मूलत: विचार-प्रधान तथा धार्मिक है, परन्तु इसमें संगठन तथा कार्य-कुशलता के तत्त्व का अभाव है।

इस युग में, एँग्लो सैक्शन (अंग्रेज) लोग रोमन शाखा का प्रतिनिधित्व करते हैं और फ्रांसीसी लोग किसी भी अन्य राष्ट्र से अधिक यूनानी शाखा का प्रतिनिधित्व करते हैं और प्राचीन हिन्दू लोग लुप्त नहीं हुए हैं। (उपरोक्त) सम्भावनामय राष्ट्र में प्रत्येक जाति के विशेष गुण की सुविधा प्राप्त होगी। उनमें रोमन लोगों की संघबद्धता, यूनानी लोगों के अद्भुत सौन्दर्य-प्रेम की शक्ति और धर्म तथा ईश्वर के रूप में हिन्दुओं का मेरुदण्ड प्राप्त होगा। इन सबको मिश्रित कर डालो और एक नयी सभ्यता प्रकट करो।

मैं आप लोगों को बताना चाहूँगा कि इसे महिलाओं द्वारा ही सम्पन्न होना चाहिए। हमारे कुछ ग्रन्थों का कहना है कि अगला और अन्तिम अवतार एक नारी के रूप में होगा।

विश्व के संसाधन अभी तक बचे हुए हैं, क्योंकि अभी तक इसकी सारी शक्तियों का उपयोग नहीं हुआ है। हाथ हमेशा सक्रिय थे, जबकि शरीर के अन्य अंग निष्क्रिय रहे। शरीर के अन्य अंगों को जाग्रत होना चाहिए और कदाचित् उनके सामंजस्यपूर्ण क्रियाशीलता से सारे कष्ट दूर हो जाएँगे। कदाचित् इस नये भूखण्ड में अपनी धमनियों के ताजे खून के द्वारा और कदाचित् अमेरिकी नारियों के माध्यम से तुम एक नारी सभ्यता की सृष्टि कर सकोगे।

यह सनातन पुण्यभूमि, जिसने मुझे यह शरीर दिया है, मैं उसकी ओर महान् श्रद्धा की दृष्टि से देखता हूँ और उन कृपालु प्रभु के प्रति आभार प्रकट करता हूँ, जिन्होंने मुझे पृथ्वी के इस पवित्रतम स्थान में जन्म लेने की अनुमति दी है। जबकि सारा संसार बाहुबलियों तथा धनवानों में अपनी आनुवंशिकता तलाश रहा है, एकमात्र हिन्दू ही ऋषियों का वंशज होने में गौरव का अनुभव करते हैं।

वह अद्भुत जलयान, जो युगों से असंख्य नर-नारियों को जीवन-समुद्र के पार ले जाता रहा है, सम्भव है उसमें जहाँ-तहाँ कुछ छोटे-मोटे छिद्र हो गये हों और प्रभु ही जानते हैं कि इन छिद्रों के लिये कितना वे लोग स्वयं जिम्मेदार हैं और कितना वे लोग, जो हिन्दुओं को तिरस्कार की दृष्टि से देखते हैं !

परन्तु यदि ऐसे छिद्र हैं, तो उनकी सबसे निकृष्ट सन्तान के रूप में मैं इसे अपना कर्तव्य समझता हूँ कि अपनी जान देकर भी मैं उसे डूबने से रोकूँ। यदि मुझे लगे कि मेरे सारे प्रयास निरर्थक सिद्ध हुए, तो भी, मैं ईश्वर को साक्षी रखते हुए अपने हार्दिक आशीर्वादों के साथ यही कहूँगा, ''मेरे भाइयो, तुम्हारी जैसी परिस्थितियों में कोई भी जाति जितनी भी कर सकती थी, उनकी अपेक्षा तुमने बहुत अच्छा किया है। मेरे पास जो कुछ भी है, वह तुम्हारा ही दिया हुआ है। मुझे अन्त तक अपने साथ रहने का सौभाग्य प्रदान करो और आओ, हम सब एक साथ मिलकर डूबें।'' **(समाप्त)**

श्रीरामकृष्ण, श्रीमाँ सारदा और अन्तरंग पार्षदों द्वारा दुर्गापूजा

स्वामी तन्निष्ठानन्द

रामकृष्ण मठ, धन्तोली, नागपुर

श्रीरामकृष्ण और दुर्गापूजा

श्रीरामकृष्ण-वचनामृत और श्रीरामकृष्ण-लीलाप्रसंग इन दोनों ग्रन्थों में श्रीरामकृष्ण के द्वारा दुर्गापूजा में बड़े ही उत्साह और आनन्द के साथ हिस्सा लेने का वर्णन आता है। हम उन्हें माँ की सखी के रूप में माँ की सेवा करते देखते हैं। उस समय वे मथुरबाबू के घर की महिलाओं के साथ इतने मिल गये थे कि उन्हें पहचान पाना कठिन था। उनका सूक्ष्म शरीर में भांजे हृदय के गाँव में पूजा के समय उपस्थित रहना, अपनी भीषण बीमारी के समय भक्त सुरेन्द्रनाथ मित्र के यहाँ दुर्गापूजा में चैतन्य जागृत करना, इन सब का वर्णन मिलता है। श्रीरामकृष्ण की महासमाधि के बाद वराहनगर मठ में दुर्गापूजा घट-पट में होती थी, पर सन् १९०१ में स्वामी विवेकानन्द और स्वामी ब्रह्मानन्द को देवी दुर्गा के दर्शन के कारण माँ सारदादेवी की उपस्थिति में पहली बार दुर्गापूजा बेलूड़ मठ में प्रतिमा में बड़े पैमाने पर मनाई गयी। सन् १९०२ से १९११ तक दुर्गापूजा घट में ही मनाई गई। पुनः १९१२ से दुर्गापूजा प्रतिमा में ही मनाई जाने लगी, जो अब तक चल रही है।

१८६८ (हृदय द्वारा श्रीदुर्गापूजन का अनुष्ठान)

श्रीरामकृष्ण देव के कथन पर विश्वास कर हृदय को बहुत कुछ शान्ति मिली, किन्तु मन्दिर का नित्य प्रति का कार्य अब उसके लिए पहले की भाँति रुचिकर प्रतीत नहीं होता था।

समाधि में श्रीरामकृष्ण तथा उनको पकड़े हुए हृदय

उसका मन नवीन किसी कार्य के द्वारा नवोल्लास प्राप्त करने की खोज करने लगा। बंगला सन् १२७५ का आश्विन महीना (सन् १८६८ ई.) आया देखकर उसने अपने मकान में श्रीशारदीय दुर्गापूजा करने का संकल्प किया। कर्मशील हृदय को उस कार्य से शान्ति मिल सकती है, ऐसा अनुभव कर श्रीरामकृष्ण देव उससे सहमत हुए। मथुरबाबू के आर्थिक सहायता करने पर भी पूजन के समय श्रीरामकृष्ण देव को मथुरबाबू अपने घर पर रखने के लिए विशेष आग्रह करने लगे। इसलिए अत्यन्त दुखित होकर हृदय पूजन के निमित्त अकेला ही घर जाने को तैयार हुआ। जाते समय उसे खिन्न देखकर श्रीरामकृष्ण देव ने कहा, ''तू दुखी क्यों हो रहा है? सूक्ष्म शरीर से मैं प्रतिदिन तेरे पूजन के समय उपस्थित होऊँगा, किन्तु तेरे सिवाय और कोई मुझे देख नहीं सकेगा। तू किसी दूसरे ब्राह्मण को 'तन्त्रधारक' (पूजन के समय पोथी देखकर मन्त्रपाठ करनेवाला) बनाकर स्वयं अपने भाव में तन्मय होकर पूजन करना तथा एकदम उपवासी न रहकर दोपहर में दूध, गंगाजल तथा मिश्री का शरबत ले लिया करना। इस तरह पूजन करने पर निश्चय ही श्रीजगदम्बा तेरा पूजन स्वीकार करेंगी।'' इस प्रकार श्रीरामकृष्ण देव ने, किसके द्वारा प्रतिमा का निर्माण करना पड़ेगा, किसे 'तन्त्रधारक' बनाना होगा तथा किस तरह अन्यान्य कार्य करने होंगे, उसे सब विस्तारपूर्वक बता दिया। हृदय अत्यन्त आनन्द के साथ पूजन करने के निमित्त चल दिया। घर पहुँचकर हृदय ने श्रीरामकृष्ण देव के कथनानुसार समस्त कार्यों को सम्पन्न किया तथा षष्ठी के दिन देवी का 'बोधन' (पूजन से पूर्व देवी के जागरण के निमित्त धार्मिक कृत्य) तथा अधिवास आदि करने के पश्चात् स्वयं पूजनकार्य में संलग्न हुआ। सप्तमी के दिन पूजन समाप्त कर रात्रि में आरती करते समय हृदय ने देखा कि श्रीरामकृष्ण देव ज्योतिर्मय शरीर से प्रतिमा के समीप भावाविष्ट होकर खड़े हुए हैं ! हृदय कहता था कि इस प्रकार प्रतिदिन आरती के समय तथा 'सन्धिपूजन'

श्रीरामकृष्ण के अन्तरंग पार्षद

(अष्टमी तथा नवमी के सन्धिक्षण में होनेवाले विशेष पूजन) के अवसर पर देवी-प्रतिमा के समीप श्रीरामकृष्ण देव का दिव्य दर्शन प्राप्त कर उसका चित्त अत्यन्त उत्साह से पूर्ण हो उठा। पूजन समाप्त होने के कुछ दिन उपरान्त हृदय दक्षिणेश्वर वापस आया तथा पूजन-सम्बन्धी समस्त वृत्तान्त उसने श्रीरामकृष्ण देव को निवेदित किया। तब श्रीरामकृष्ण देव ने उससे कहा, ''आरती तथा 'सन्धिपूजन' के समय तेरा पूजन देखने के निमित्त वास्तव में मेरे प्राण व्याकुल हो उठे थे तथा भावाविष्ट होकर मैंने यह अनुभव किया था कि ज्योतिर्मय शरीर धारण कर ज्योतिर्मय मार्ग से मैं तेरे 'चण्डीमण्डप' में उपस्थित हुआ हूँ।'' हृदय कहता था कि किसी समय भावाविष्ट होकर श्रीरामकृष्ण देव ने उससे कहा था – 'तू तीन वर्ष तक दुर्गापूजन करेगा।' वैसा ही हुआ भी। श्रीरामकृष्ण देव की बात न मानकर चौथी बार पूजन के आयोजन के समय इतने अधिक विघ्न उपस्थित हुए थे कि अन्त में विवश होकर उसे पूजन बन्द कर देना पड़ा था।

मथुरबाबू की दुर्गापूजा :

इस वर्ष मथुरबाबू के जानबाजार स्थित भवन में दुर्गापूजा के अवसर पर विशेष आनन्दोत्सव हुआ था। क्योंकि श्रीरामकृष्ण इस अवसर पर वहाँ उपस्थित थे। श्रीरामकृष्ण के अलौकिक देवभाव ने बाहर की जड़-वस्तुओं को स्पर्श कर उनके अन्दर मानों सचमुच ही प्राणप्रतिष्ठा कर दी थी। आरती के पूर्व श्रीरामकृष्ण देवी के सखी भाव में इतने लीन हो गये कि जैसे वे देवी की जन्म-जन्मान्तर की दासी हैं। उनके नेत्रों की दृष्टि, हाथ-पैर आदि का संचालन, अंग-भंगी इत्यादि सब कुछ रमणियों के सदृश थे। मथुरबाबू द्वारा दिये गये वस्त्र तथा आभूषण उन्होंने रमणियों की भाँति पहन रखे थे। भावावेश में उनका रंग और भी उज्ज्वल हो उठता था। मथुरबाबू की पत्नी ने उन्हें अपने आभूषण पहना दिये और आरती के लिए चलने का आग्रह करने से उनकी भावसमाधि थोड़ी उपशमित हुई। सखीभाव से ठाकुर दुर्गामाई को चँवर डुलाने लगे। उनकी पत्नी के समीप सुन्दर वस्त्र तथा आभूषण आदि पहनकर अपूर्व सौन्दर्य विस्तार करती हुई कोई महिला खड़ी होकर देवी प्रतिमा को चँवर कर रही है, यह देख मथुरबाबू विस्मित हो गये। वे पहचान ही नही पाये की वे ठाकुर हैं। सप्तमी, अष्टमी तथा नवमी के पूजनादि अत्यन्त आनन्द के साथ सम्पन्न हुए। विजयादशी के दिन दर्पण-विसर्जन के समय बुलावा भेजने पर भी मथुरबाबू नहीं आ रहे थे।

मथुरनाथ विश्वास

वहाँ जाकर श्रीरामकृष्ण देव ने देखा कि मथुरबाबू का मुखमण्डल गम्भीर तथा रक्तवर्ण है एवं उनकी दोनों आँखें लाल हैं। वे किसी गहन विचार में मग्न हो कमरे के अन्दर टहल रहे हैं। उनको देखते ही मथुरबाबू उनके समीप पहुँचे तथा बोले, ''बाबा ! चाहे कुछ भी हो, मैं अपने जीवित रहते माँ का विसर्जन न होने दूँगा। मैंने यह कह दिया है कि मैं उनका नित्य पूजन करता रहूँगा। माँ को छोड़कर मैं कैसे रह सकता हूँ?''

श्रीरामकृष्ण देव उनके वक्षःस्थल पर हाथ फेरते हुए बोले, ''ओह! तुम्हें इसी बात का भय है? पर यह कौन कहता है कि माँ को छोड़कर तुम्हें रहना पड़ेगा? उनका विसर्जन करने पर भी वे चली कहाँ जायेंगी? सन्तान को छोड़कर क्या कभी माँ रह सकती है? इन तीनों दिन बाहर पूजन-मण्डप में विराजकर उन्होंने तुम्हारा पूजन स्वीकार किया है, आज से तुम्हारे और भी सन्निकट रहकर सर्वदा तुम्हारे हृदय में विराजित हो, वे तुम्हारी पूजा ग्रहण करती रहेंगी।''

१८८३ में अधर के मकान पर दुर्गापूजा-महोत्सव और श्रीरामकृष्ण का जगन्माता के साथ वार्तालाप

अधर के मकान पर नवमी-पूजा के दिन दालान में श्रीरामकृष्ण खड़े हैं। सन्ध्या के बाद श्रीदुर्गा माई की आरती देख रहे हैं। अधर के घर पर दुर्गापूजा का महोत्सव है। इसलिए वे श्रीरामकृष्ण को निमन्त्रित करके लाए हैं। आज बुधवार है। १० अक्तुबर, १८८३ ई.। श्रीरामकृष्ण भक्तों के साथ पधारे हैं। उनमें बलराम के पिता तथा अधर के मित्र स्कूल-इन्स्पेक्टर सारदाबाबू भी आए हैं। अधर ने पूजा के उपलक्ष्य में पड़ोसी तथा स्वजन-परिजनों को भी निमन्त्रण दिया है। वे भी आए हैं। श्रीरामकृष्ण संध्या की आरती देखकर भाव-विभोर होकर पूजा के दालान में खड़े हैं। भावाविष्ट होकर माँ को गाना सुना रहे हैं। अधर गृही भक्त हैं। और भी अनेक गृही भक्त उपस्थित हैं। वे सब त्रितापों से तापित

हैं। सम्भव है, इसीलिए श्रीरामकृष्ण सभी के मंगल के लिए जगन्माता की स्तुति कर रहे हैं।

(संगीत का भावार्थ) – ''हे तारिणि ! मुझे तारो। अब की बार शीघ्र तारो। हे माँ, जीवगण यम से भयभीत हो गए हैं। हे जगज्जननि ! संसार को पालनेवाली ! लोगों को मोहनेवाली जगज्जननि ! तुमने यशोदा की कोख में जन्म लेकर हरि की लीला में सहायता की थी; तुमने वृन्दावन में राधा बन व्रजवल्लभ के साथ विहार किया। रास रचकर रसमयी तुमने रासलीला का प्रकाश किया। हे माँ, तुम गिरिजा हो, गोपतनया हो, गोविन्द की मनमोहिनी हो, तुम सद्गति देनेवाली गंगा हो। हे गौरि, सारा विश्व तुम्हारा गुणगान गाता है। हे शिवे ! हे सनातनि ! सदानन्दमयी सर्वस्वरूपिणि! हे निर्गुणे, हे सगुणे ! हे सदाशिव की प्रिये ! तुम्हारी महिमा को कौन जानता है !''

श्रीरामकृष्ण अधर के मकान के दुमँजले पर बैठकघर में बैठे हैं। कमरे में अनेक आमन्त्रित व्यक्ति आए हैं। बलराम के पिता और सारदाबाबू आदि पास बैठे हैं। श्रीरामकृष्ण अभी भी भावविभोर हैं। आमन्त्रित व्यक्तियों को सम्बोधित कर कह रहे हैं, ''मैंने भोजन कर लिया है; अब तुम लोग भी भोजन करो।''

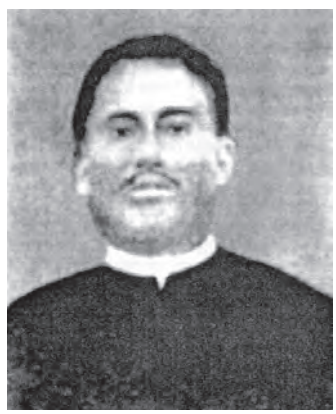
अधरलाल सेन

अधर की पूजा और नैवेद्य को माँ ने ग्रहण किया है; क्या इसीलिए श्रीरामकृष्ण जगन्माता के आवेश में आकर कह रहे हैं, 'मैंने खा लिया है; अब तुम लोग भी प्रसाद पाओ'?

श्रीरामकृष्ण भावाविष्ट होकर जगन्माता से कह रहे हैं, ''माँ! मैं खाऊँ? या तुम खाओगी? माँ, कारणानन्दरूपिणी!''

क्या श्रीरामकृष्ण जगन्माता को और अपने को एक ही देख रहे हैं! जो माँ हैं, क्या वही स्वयं लोकशिक्षा के लिए पुत्र के रूप में अवतीर्ण हुई हैं? क्या इसीलिए श्रीरामकृष्ण भाव के आवेश में कह रहे हैं, मैंने भोजन कर लिया है?

इसी प्रकार भाव के आवेश में देह के बीच षट्चक्र और उसमें माँ को देख रहे हैं। इसलिए फिर भावविभोर होकर गाना गा रहे हैं – (भावार्थ) – ''हे माँ हरमोहिनी, तूने संसार को भुलावे में डाल रखा है। मूलाधार महाकमल में तू वीणावादन करती हुई चित्तविनोदन करती है। ...''

अभया की शरण में जाने से सभी भय दूर हो जाते हैं, सम्भव है, इसीलिए वे भक्तों को अभयदान दे रहे हैं और गाना गा रहे हैं – (भावार्थ) 'मैंने अभय पद में प्राणों को सौंप दिया है' इत्यादि।

१८८४ में श्रीरामकृष्ण-नरेन्द्रनाथ और दुर्गापूजा : महाष्टमी के दिन राम के घर पर श्रीरामकृष्ण

आज रविवार, महाष्टमी है, २८ सितम्बर, १८८४। श्रीरामकृष्ण देवी-प्रतिमा के दर्शन के लिए कलकत्ता आये हुए हैं। अधर के यहाँ शारदीय दुर्गोत्सव हो रहा है। श्रीरामकृष्ण का तीनों दिन न्योता है। अधर के यहाँ प्रतिमा-दर्शन करने के पहले आप राम के घर जा रहे हैं। विजय, केदार, राम, सुरेन्द्र, चुनीलाल, नरेन्द्र, निरंजन, नारायण, हरीश, बाबूराम, मास्टर आदि बहुत भक्त साथ में हैं; बलराम और राखाल अभी वृन्दावन में हैं।

बड़ी देर बाद समाधि भंग हुई। अब भी आनन्द का नशा नहीं उतरा है। श्रीरामकृष्ण आप ही आप बातचीत कर रहे हैं। भावस्थ होकर नाम जप रहे हैं। ... नरेन्द्र सामने बैठे हुए थे। उनकी उम्र २२-२३ की होगी। ये बातें कहते-कहते श्रीरामकृष्ण की नरेन्द्र पर दृष्टि पड़ी। श्रीरामकृष्ण खड़े होकर समाधिमग्न हो गये। नरेन्द्र के घुटने पर एक पैर बढ़ाकर उसी भाव से खड़े हैं। बाहर का कुछ भी ज्ञान नहीं है, आँखों की पलक नहीं गिर रही है। बड़ी देर बाद समाधि भंग हुई। अब भी आनन्द का नशा नहीं उतरा है। श्रीरामकृष्ण आप ही आप बातचीत कर रहे हैं। भावस्थ होकर नाम जप रहे हैं। कहते हैं – ''सच्चिदानन्द ! सच्चिदानन्द ! कहूँ? नहीं, आज तू कारणानन्ददायिनी है – कारणानन्दमयी। सा रे ग म प ध नि। नि में रहना अच्छा नहीं। बड़ी देर तक रहा नहीं जाता। एक स्वर नीचे रहूँगा।''

... नरेन्द्र गा रहे हैं – ''माँ, मुझे पागल कर दे, ज्ञान के विचार से मुझे काम नहीं।'' गाना सुनते ही श्रीरामकृष्ण समाधिस्थ हो गये। समाधि के छूटने पर पार्वती की माता का भाव अपने पर आरोपित करके श्रीरामकृष्ण 'आगमनी' (देवी के आगमन के समय का संगीत जो बंगाल में गाया जाता है) गा रहे हैं। गाने के बाद श्रीरामकृष्ण भक्तों से कह रहे

हैं, आज महाष्टमी है न, माँ आयी हुई हैं। इसीलिए इतनी उद्दीपना हो रही है। श्रीरामकृष्ण गा रहे हैं – ''सखी री ! जिसके लिए मैं पागल हो गयी, उसे अभी कहाँ पायी?''

श्रीरामकृष्ण गा रहे हैं, एकाएक 'हरि बोल' 'हरि बोल' कहकर विजय खड़े हो गये। श्रीरामकृष्ण भी भावोन्मत्त होकर विजय आदि भक्तों के साथ नृत्य करने लगे।

कामारपुकुर में दुर्गापूजा

सन् १८८६ में ठाकुर के देहत्याग के बाद श्रीमाँ कामारपुकुर में बड़े कष्ट में दिन बिता रही थीं। जब ठाकुर

श्रीरामकृष्ण मन्दिर, कामारपुकुर

के भक्तों को यह बात मालुम हुई, तब कहीं वह परिस्थिति सामान्य हुई। आश्विन मास में नवरात्रि के समय नवमी के दिन श्रीरामकृष्ण के यहाँ शीतला-माता की षोडशोपचार पूजा होती, भोग लगता और ब्राह्मण-भोजन होता था। श्रीमाँ पहले से ही अपने हाथों चावल बनाती थीं और अन्यान्य सामग्रियाँ संग्रह कर रखती थीं; वे स्वयं रसोई भी पकाती थीं। परोसते समय वे शिबू दादा से कहतीं, 'शिबू, तू पत्तल बिछाकर जल और नमक दे, मैं सब को भात परोसती हूँ।' सागर की माँ कहती है, 'उनका मानो लक्ष्मी का भण्डार था। किसी चीज की कमी नही होती थी; जो बचता उसे सावधानी से रख देती थीं। दूसरे दिन हमलोगों को बुलाकर बड़े प्रेम से खिलाती थीं।'

रामकृष्ण संघ में दुर्गापूजा का प्रारम्भ

रामकृष्ण संघ का प्रारम्भ सन् १८८६ में (१९ अक्तूबर, दुर्गापूजा के बाद) वराहनगर के एक पुराने मकान में हुआ, जिसे १८९२ में (फरवरी के आरम्भ में) आलमबाजार में और १३ फरवरी, १८९८ में बेलूड़ स्थित नीलाम्बर बाबू के उद्यान भवन में स्थानान्तरित किया गया। अन्त में वह २ जनवरी, १८९९ में बेलूड़ के अपने नये तथा स्थायी स्थान पर स्थानान्तरित हुआ। प्रारम्भ में कई साल दुर्गापूजा प्रतिमा में नहीं होती थी। यद्यपि रामकृष्ण संघ के आरंभ-काल में या जब मठ बराहनगर में था, तब से ही दुर्गापूजा छोटे पैमाने पर श्रीरामकृष्ण के शिष्यगण प्रतिमा के बिना ही मनाया करते थे। नवरात्रि उत्सव देवी दुर्गा का फोटो लगाकर और घट स्थापित कर किया जाता था। उस समय स्वामीजी ने पूजा-विधि को थोड़ा कम कराया था।

सन् १८८७ : मठ तब वराहनगर में था। मठवासियों ने इस साल भी दुर्गापूजा घट और पट में मनायी थी। १० मई, १८८७ के दिन (मंगलवार कृष्णा तृतीया) स्वामीजी ने कालीपूजा करने का आयोजन किया था और बलि की भी व्यवस्था की थी। हमें यह भी ज्ञात है कि सन् १९०१ में काली-पूजा में भी बलि दी गयी थी। उस सम्बन्ध में ३ अगस्त, १९३० को स्वामी शिवानन्द जी ने बताया था, ''यज्ञ में जिस पशु का उपयोग होता है, उसमें पशुत्व नहीं रह जाता। वराहनगर में हमलोगों ने बलि देकर पूजा की थी। पशु के प्रत्येक अंग-प्रत्यंग में विभिन्न देवताओं की कल्पना करने के बाद वह पशु नहीं प्रतीत होता, सच कहता हूँ, ऐसा लगा था, मानो वह एक देवता हो। एक बार और मठ में ही स्वामीजी ने बलि-होम किया था और कहा था, 'लोभ के लिये खाना आदि नहीं चलेगा।' ''

सन् १८८८ : जब ठाकुर काशीपुर में बीमार थे,

वराहनगर मठ, कोलकाता

तब मास्टर महाशय अपने घर दुर्गापूजा करना चाहते थे। पर ठाकुर ने उन्हें कहा, 'तुम्हारी यह इच्छा भविष्य में पूरी होगी।' अक्तूबर, १८८८ में दुर्गापूजा के पहले माँ सारदा

देवी मास्टर महाशय के घर वास कर रही थीं। ठाकुर ने माँ को स्वप्न में दर्शन देकर कहा, 'मास्टर की दुर्गापूजा करने की इच्छा है, आप उसके घर घट-स्थापना कीजिए।' तदनुसार ८ अक्तूबर, १८८८ के दिन माँ ने चण्डीमंगल-घट की स्थापना की और साथ में ठाकुर के फोटो की भी प्राण-प्रतिष्ठा की।

सन् १८९४ : जयरामवाटी में कुछ दिन रहकर श्रीमाँ जब कलकत्ते आयीं, तब भक्तों ने बेलूड़ में उनके रहने की व्यवस्था की। क्रमश: शारदीया दुर्गा-पूजन का समय उपस्थित हुआ। स्वामी प्रेमानन्द की भक्तिमती माता ने अपने निवास-स्थान आँटपुर में अबकी बार कुछ वर्षों के बाद दशभुजा-दुर्गा की मूर्ति बनाकर पूजन का आयोजन किया था। उन लोगों के विशेष आग्रह से श्रीमाँ को पूजन के उपलक्ष्य में वहाँ जाना पड़ा। इस घटना का उल्लेख कर स्वामी विवेकानन्द ने अमेरिका से अपने किसी गुरुभाई को लिखा था, ''बाबूराम की माँ बुढ़ापे में बुद्धि से हाथ धो बैठी हैं। जीवित-दुर्गा को त्यागकर वह मिट्टी की बनी हुई दुर्गा की पूजा करने बैठी हैं। ...'' पूजन के बाद श्रीमाँ आँटपुर से जयरामवाटी चली गयीं।

सन् १८९६ : दुर्गापूजा के समय माँ कलकत्ता के बागबाजार मोहल्ले के एक किराये के मकान के तीसरी मंजिल पर रहती थीं। अष्टमी के दिन साधु तथा भक्त माँ को प्रणाम करने आये थे। मास्टर महाशय भी तब वहाँ थे। सब लोग माँ को प्रणाम करने के लिए गये, पर मास्टर महाशय नहीं गये। पूछने पर उन्होंने मुस्कराते हुए कहा, 'मैं उनका दर्शन कलकत्ता के बागबाजार स्थित सिद्धेश्वरी काली मन्दिर में कर आया हूँ।' उन्हें उत्तर मिला, 'पर माँ तो वहाँ गयी ही नहीं।' इस पर वे बोले, 'लेकिन मैंने उनके दर्शन वहीं किये हैं' ऐसा कहकर वे एक भजन गाने लगे।

सन् १८९७ : मठ तब आलमबाजार में था। प्रति वर्ष की भाँति इस वर्ष भी दुर्गापूजा घट और पट में मनायी गयी। पुजारी थे सुशील महाराज (स्वामी प्रकाशानन्द) और तन्त्रधारक थे सुधीर महाराज (स्वामी शुद्धानन्द)। स्वामी तुरीयानन्द ने पूजा-विधि के साथ नौ दिन तक चण्डीपाठ किया। महाष्टमी के दिन अर्थात् रविवार ३ अक्तूबर, १८९७ को करीब पचास भक्त पूजा में सम्मिलित हुए और प्रसाद भी ग्रहण किया था। भजन-कीर्तन उत्सव से पूजा में रौनक आ गई थी।

सन् १८९८ : कश्मीर में स्वामीजी बहुत बीमार थे और स्वास्थ्य लाभ के बाद वे सीधे कलकत्ता लौट आये। खेतड़ी के महाराजा को १६ अक्तूबर, १८९८ को लिखे पत्र में वे कहते हैं, 'पिछले दस वर्षों से मैंने बंगाल की श्रीदुर्गा-पूजा, जो बहुत धूमधाम से होती है और जिसका बंगाल में विशेष महत्त्व है, नहीं देखी है। मुझे आशा है कि इस बार पूजा में मैं वहाँ उपस्थित रहूँगा।'

अचानक स्वामीजी सदानन्द को लेकर लाहौर से सीधा १८ अक्तूबर, १८९८ को नीलाम्बर बाबू के बगीचे में अवस्थित मठ में उपस्थित हुए। वातावरण आनन्दमय हो उठा, पर स्वामीजी के भग्न स्वास्थ्य और गहन अन्तर्मुख भाव को देखकर राजा महाराज की दुश्चिन्ता बढ़ गई। दो-तीन दिन बाद स्वामीजी के प्रिय शिष्य शरतचन्द्र चक्रवर्ती के मठ में आने पर महाराज ने उनसे कहा, ''कश्मीर से लौटकर आने के बाद से स्वामीजी किसी के साथ कोई बातचीत नहीं करते, स्तब्ध होकर बैठे रहते हैं। तू स्वामीजी के पास बैठकर बातचीत करके स्वामीजी के मन को नीचे उतारने का प्रयास करना।'' शिष्य ने स्वामीजी का दर्शन करके जाना कि अमरनाथ दर्शन के बाद से शिव मानो उनके मस्तक में जमकर बैठ गए हैं।

कुछ ही दिनों में स्वामीजी स्वस्थ हो गए। एक दिन वे दोपहर को मठ की नई जमीन देख आए। उसी दिन शाम को उन्होंने कश्मीर-वास के समय रचित अपनी गम्भीर भाव-व्यंजना से युक्त मृत्युरूपा माता **(Kali the Mother)** एवं अन्य दो अँग्रेजी कविताओं का पाठ करके सबको सुनाया। दुर्गापूजा आई, मठ में आमोद-आह्लाद की तरंगे उठने लगीं। नवरात्रिव्यापी चण्डीपाठ और पट में पूजा का आयोजन हुआ। १९ और २० अक्तूबर, १८९८ को स्वामीजी ने अपने हाथों से 'सप्तशती' होम किया। दूसरे दिन (२१ अक्तूबर, १८९८) सप्तमी के दिन उन्होंने राजा महाराज, प्रकाशानन्द और विमलानन्द के साथ बागबाजार में श्रीमाता ठाकुरानी की चरण वन्दना की। २१,२२ और २३ अक्तूबर, १८९८ को दुर्गापूजा का मुख्य अंग बड़े उत्साह के साथ व्यतीत किया और स्वामीजी ने भी इसमें योगदान किया। बहुत-से भक्तों का भी समागम हुआ। २४ अक्तूबर, १८९८ को स्वामी तुरीयानन्द अलमोड़ा से मठ आ पहुँचे। इस प्रकार दुर्गापूजा महानन्द से व्यतीत हुई। इस तरह उनकी वराहनगर मठ की स्मृतियाँ जागृत हुईं।

सन् १८९९ : इस साल एक रात्री को स्वामी सारदानन्द ने अपने चाचा विख्यात् तन्त्रसाधक श्री ईश्वरचन्द्र चक्रवर्ती (स्वामी रामकृष्णानन्द के पिता) के साथ मिलकर दुर्गापूजा (मंगलाचण्डी) की थी। इस अवसर पर दुर्गासप्तशती का होम भी किया गया था।

सन् १९०१ : इस समय स्वामीजी की समाज-विषयक धारणायें उदार होते हुए भी धर्म-विषयक धारणायें परम्परावादी थीं। सन् १९०१ में उन्होंने लगभग सभी धार्मिक उत्सव मठ में मनाये थे। बेलूड़ मठ में दुर्गापूजा पहली बार सन् १९०१ में मनाई गयी (१८-२१ अक्तूबर)। तब से प्रति वर्ष दुर्गापूजा बेलूड़ मठ में बड़े उत्साह के साथ मनाई जाती है। स्वामी विवेकानन्द ने स्वयं बेलूड़ मठ में दुर्गापूजा प्रतिमा के साथ करने की परम्परा आरम्भ की थी। सन् १९०१ के मई या जून माह में स्वामीजी ने अपने शिष्य शरच्चन्द्र चक्रवर्ती से रघुनन्दन रचित 'अष्टाविंशति-तत्त्व' नामक स्मृति मँगवाकर उसमें से दुर्गोत्सव-विधि पढ़ी थी। (यह ग्रन्थ आज भी बेलूड़ मठ में सुरक्षित है।) उन्होंने कहा था, 'यदि धन की व्यवस्था हो जाय, तो महामया की पूजा करूँगा।' यथासमय धन भी एकत्र हुआ और उसी वर्ष बेलूड़ मठ में पहली बार दुर्गोत्सव का आयोजन हुआ। स्वामीजी ने कहा, 'हमलोग तो कौपीनधारी हैं, हमारे नाम पर पूजा नहीं होगी।' अतएव पूजा का संकल्प श्रीमाँ के नाम पर करने का निर्णय हुआ।

संन्यासी के लिए दुर्गापूजा जैसे कर्मकाण्ड या पूजा का कोई विधान नहीं है, तब स्वामीजी ने इस तरह की परम्परा क्यों आरम्भ की?

एक कारण यह था कि स्वामीजी तथा उनके अन्य गुरुभाई जिस नयी पद्धति से साधु-जीवन व्यतीत कर रहे थे, उसको स्थानीय लोगों की स्वीकृति प्राप्त करना। कलकत्ता के सनातनी लोगों ने स्वामीजी के विदेश-गमन को बहुत अच्छी दृष्टि से नही लिया था। यहाँ तक कि बेलूड़ मठ द्वारा जाति-भेद नहीं मानना तथा विदेशी लोगों से मिलना-जुलना उनकी दृष्टि में खटक रहा था। बेलूड़ मठ में दुर्गापूजा का आरम्भ होने से स्थानीय हिन्दू समाज में इस नये साधु जीवन के प्रति सहानुभूति उत्पन्न हुई। कई ब्राह्मण-पण्डितों ने दुर्गापूजा में निमन्त्रित होकर योगदान किया था और पूजा देखकर उनके मन में निश्चित धारणा उपजी कि ये संन्यासी सनातन मार्ग के विरोधी नहीं हैं।

दूसरा कारण यह था कि स्वामीजी मातृत्व की दिव्यता तथा नारीत्व की निर्मलता को प्रतिस्थापित करना चाहते थे। स्वामीजी ने विदेशों मे देखा था कि वहाँ के समाज की प्रगति नारी-उत्थान से ही हुई थी और दूसरी ओर भारत के पिछड़ने का मुख्य कारण था भारतीय नारी की उपेक्षा करना। नारियों के दिव्यत्व की क्षमता पहचानकर उनके प्रति लोगों के मन में आदरभाव उत्पन्न करना, यह भी एक कारण था। इसीलिए स्वामीजी ने बेलूड़ मठ में कुमारी पूजा भी की थी।

तीसरा कारण स्वामीजी तथा स्वामी ब्रह्मानन्द (राजा महाराज) को हुए माँ दुर्गा के अलौकिक दर्शन हैं। सन् १९०१ की दुर्गापूजा के कुछ दिन पूर्व स्वामीजी को बेलूड़ मठ में दुर्गापूजा हो रही है, ऐसा दिव्य स्वप्न दिखा था। वे कलकत्ता से बेलूड़ मठ नौका से आ रहे थे, तब उन्होंने मठ में माँ दुर्गा का दिव्य रूप देखा। उसी समय स्वामी ब्रह्मानन्द ने भी स्वप्न में देखा था कि दशभुजाधारी माँ दुर्गा गंगा के मार्ग से दक्षिणेश्वर से बेलूड़ मठ आकर बिल्व वृक्ष के पास पधारी हैं। तभी स्वामीजी कलकत्ता से नौका से मठ लौटकर पूछने लगे, 'राजा कहाँ है?' राजा महाराज को देखकर वे बोले, 'इस बार मठ में दुर्गापूजा प्रतिमा में होनी चाहिए।' राजा महाराज बोले, 'मुझे थोड़ा समय दीजिए।'

इस घटना के बाद स्वामीजी ने राजा महाराज को दुर्गापूजा के आयोजन के निर्देश दिये थे। दुर्गापूजा के लिए कुछ ही दिन बाकी थे। माँ की प्रतिमा की उपलब्धता ही मुख्य समस्या थी। खोज करने पर कलकत्ता के कुमारटोली मोहल्ले में माँ की एक सुन्दर प्रतिमा सौभाग्यवश उपलब्ध हुई, क्योंकि जिनके लिए वह प्रतिमा बनाई गयी थी, वे उसे लेने नहीं आए। उसके बाद पूजा-सामग्री का आयोजन शुरू हुआ। पूजा के आयोजन और अनुष्ठान में कोई कमी नहीं थी। राजा महाराज के प्रभावी नेतृत्व के कारण यह कठिन कार्य भी आसानी से सम्पन्न हुआ।

पूजा के दस-बारह दिन पूर्व तक इस विषय में कोई खुली चर्चा नहीं हुई थी। स्वामीजी ने ब्रह्मानन्दजी को बताया कि वे भावनेत्रों से मठ में दुर्गोत्सव तथा प्रतिमा में पूजन होते देख रहे हैं। तब स्वामी ब्रह्मानन्द ने भी अपने दर्शन की बात कही। मठ में यह समाचार सुनकर हलचल मच गयी। स्वामी ब्रह्मानन्द के आदेश पर ब्रह्मचारी कृष्णलाल प्रतिमा की खोज में कलकत्ते के कुमारटोली गए, तब पूजा को चार-पाँच दिन ही बचे थे। तथापि आश्चर्य की बात यह कि

वहाँ केवल एक ही प्रतिमा दीखी। कृष्णलाल ने कारीगर से पूछा, ''तुम यह प्रतिमा हमें दे सकोगे?'' उत्तर में कारीगर ने बताया कि जिन्होंने इसे बनाने का आदेश दिया था, वे न जाने क्यों अब भी इसे ले नहीं गए। वे लेंगे या नहीं, यह पता लगाकर अगले दिन वह निश्चित रूप से बता सकेगा। स्वामीजी कृष्णलाल के मुख से सारी बातें सुनकर बोले, ''जैसे भी हो, प्रतिमा को ले आना।'' अन्त में वह प्रतिमा मिल गयी और उसी में मठ की पूजा सम्पन्न हुई।

दुर्गापूजा करने का निर्णय लेने के बाद स्वामीजी ने सर्वप्रथम माँ सारदादेवी की अनुमति प्राप्त करना उचित समझा। माँ तब कलकत्ता के बागबाजार में निवास कर रही थीं। स्वामीजी स्वामी प्रेमानन्द तथा ब्रह्मचारी कृष्णलाल के साथ माँ के पास अनुमति हेतु गये और माँ ने भी सानन्द दुर्गापूजा की अनुमति प्रदान की। उन्होंने कहा, 'हाँ बेटा, बेलूड़ मठ में तुम लोग दुर्गापूजा कर सकते हो। इस जगत में शक्तिपूजा के बिना कुछ भी प्राप्त नहीं हो सकता। पर बेटा, पूजा में बलि मत देना। तुम लोग संन्यासी हो और तुमने सम्पूर्ण जीव-जगत को अभय प्रदान करने की प्रतिज्ञा की है।' स्वामीजी दुर्गापूजा में बलि देना चाहते थे, पर माँ के आज्ञानुसार उन्होंने वैसा नहीं किया।

यह प्रथम दुर्गापूजा बेलूड़ मठ में पुराने मन्दिर के उत्तर मैदान में एक बड़े पण्डाल में आयोजित की गयी। (पुराना मन्दिर और आम का वृक्ष इसके बीच में दुर्गापूजा सम्पन्न हुई थी।) ब्रह्मचारी कृष्णलाल (बाद में स्वामी धीरानन्द) पुजारी तथा स्वामी रामकृष्णानन्द के पिता श्री ईश्वरचन्द्र चक्रवर्ती तन्त्रधारक नियुक्त हुए। ईश्वरचन्द्र खूब निष्ठावान, धर्मानुष्ठान-परायण एवं पूजा-पाठ में परम दक्ष थे। सब प्रकार की पूजा-अर्चना के मन्त्र उन्हें प्राय: कण्ठस्थ थे। वे विशेष पूजा-अनुष्ठान में स्वयं व्रती होने पर पूर्व दिन से ही यथाविधि संयम का पालन करते।

षष्ठी के बोधन के एक-दो दिन पहले (१७ अक्तूबर, १९०१) ब्रह्मचारी कृष्णलाल, निर्भयानन्द आदि संन्यासी तथा ब्रह्मचारीगण नाव पर देवी की प्रतिमा को मठ में ले आये। पुराने मन्दिर के नीचे की मंजिल में माँ की मूर्ति को रखने के साथ ही मानो आकाश टूट पड़ा, मूसलाधार पानी बरसने लगा। स्वामीजी यह सोचकर निश्चिन्त हुए कि माँ की प्रतिमा निर्विघ्नतापूर्वक मठ में पहुँच गयी है। अब पानी बरसने से भी कोई हानि नहीं है।

इधर स्वामी ब्रह्मानन्द के प्रयत्न से मठ द्रव्य-सामग्रियों से भर गया। पूजा की सामग्रियों की कोई कमी नहीं है, यह देखकर स्वामीजी स्वामी ब्रह्मानन्द आदि की प्रशंसा करने लगे। मठ के दक्षिण की ओर बगीचेवाला मकान है, जो पहले नीलाम्बर बाबू का था, वह एक महीने के लिए किराये से लेकर पूजा के दिन से वहाँ माताजी के रहने की व्यवस्था की गयी।

अधिवास की सायंकालीन पूजा स्वामीजी के प्रिय बिल्ववृक्ष के नीचे सम्पन्न हुई। बिल्ववृक्ष के नीचे बैठकर स्वामीजी ने माँ दुर्गा के स्वागत में आगमनी भजन गाये – 'बिल्ववृक्षमूले पातिया आसन, गणेशेर कल्याणे गौरीर आगमन।' (बिल्व वृक्ष के नीचे आसन लगाकर गणेश के अर्थात् अपने पुत्र के कल्याणार्थ गौरी का आगमन होता है।) उसी वृक्ष के नीचे बोधन-अधिवास की सान्ध्यपूजा सम्पन्न हुई। श्रीमाँ की अनुमति लेकर ब्रह्मचारी कृष्णलाल सप्तमी के दिन पुजारी के आसन पर विराजे। यथाविधि देवीपूजा सम्पन्न हुई। सप्तमी की रात यानी १९ अक्तूबर को स्वामीजी को तेज बुखार आया और दमा से भी कष्ट हुआ। अष्टमी के दिन वे अपने कमरे से नीचे ही नहीं उतरे। २० तारीख को सुबह लगभग ६ बजे सन्धिपूजा (६.१७ से ७.०५ तक) में पुष्पांजलि देने के लिए वे आये। हजारों भक्तों ने इस त्रिदिवसीय उत्सव में बड़े उत्साह के साथ भाग लिया। नवमी

पुराना मन्दिर और आम के वृक्ष के बीच में दुर्गापूजा का स्थान

की रात्री को स्वामीजी ने माँ की स्तुति में एक-दो भजन गाये, जिन्हें श्रीरामकृष्ण नवमी की रात को गाया करते थे। मठ में उस रात्रि को आनन्द मानो उमड़ पड़ा था। नवमी पूजा के अन्त में माँ के द्वारा यज्ञ का दक्षिणान्त कराया गया; स्वामीजी ने अपने हाथ से तन्त्रधारक को पच्चीस रुपये प्रणामी दिलवाई। गरीब-दुखियों को तृप्ति से भोजन कराना, जो इस उत्सव का एक प्रधान अंग था।

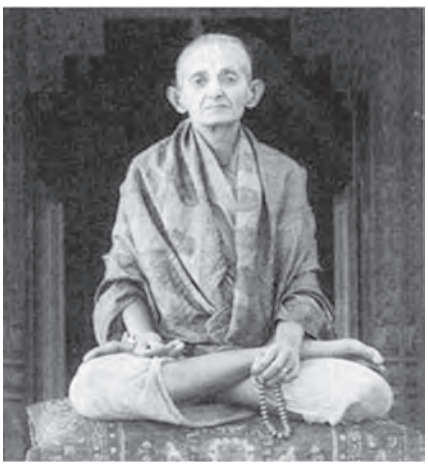
यशोदा माई

बेलूड़, बाली तथा उत्तरपाड़ा के अनेक परिचित तथा अपरिचित ब्राह्मण-पण्डितों ने इस पूजा में निमन्त्रित होकर योगदान किया था।

इस बार स्वामीजी ने बेलुड़ मठ में कुमारी पूजा भी आरम्भ की थी। हमें ज्ञात ही है कि स्वामीजी ने परिव्राजक जीवन में गाजीपुर के रायबहादुर श्री गगनचन्द्र राय की नौ साल की सुन्दर तथा बुद्धिमान पुत्री मोनिका (जो आगे चल कर लखनऊ विश्वविद्यालय के प्रथम कुलगुरु डॉ. ज्ञानेन्द्र चक्रवर्ती, जो शिकागो की विश्वधर्म महासभा में भी गये थे, उनकी पत्नी हुई। बाद में मोनिका ने गौडीय वैष्णव पंथ में संन्यास ग्रहण किया और आगे चलकर अलमोड़ा के मीरटोला आश्रम की विख्यात यशोदा माई हुई।) की कुमारीपूजा की थी। उन्होंने (अगस्त १८९८) कश्मीर के श्रीनगर के डल लेक (झील) हाउसबोट के एक मुसलमान मल्लाह की चार साल की शिशु-कन्या सोफिया की, क्षीरभवानी मन्दिर में पण्डित आनन्दाझू धर की आठ साल की कन्या रानीन्डद (राधिकारानी-उमा) की तथा मद्रास के श्री मन्मथनाथ भट्टाचार्य की आठ साल की पुत्री सरमा की कन्याकुमारी में (दिसम्बर १८९२) कुमारीपूजा की थी।

सोफिया

रानीन्डद (राधिकारानी-उमा)

पहली दुर्गापूजा के समय बेलुड़ मठ में नौ कुमारियों की पूजा की थी। (उन नौ कुमारियों में एक थी श्रीरामकृष्ण के भतीजे रामलाल दादा की कनिष्ठ कन्या राधारानी और एक थी दुर्गापूरी देवी) स्वामीजी के अनुरोध पर गौरी माँ ने कुमारी-पूजा की सब व्यवस्था की थी। स्वामीजी ने पाद्य-अर्घ्य, शंख की चूड़ियाँ, वस्त्रादि देकर स्वयं कुमारी पूजा की थी। उन्होंने कुमारियों को मिष्टान्न, दक्षिणादि देकर भूमिष्ठ होकर प्रणाम भी किया था। एक कुमारी इतनी अल्पवयस्क थी (दुर्गापूरी देवी जो बाद में गौरीमाँ द्वारा प्रतिष्ठित सारदेश्वरी आश्रम की द्वितीय अध्यक्षा बनी, वे माँ की मन्त्र शिष्या थी) कि पूजा के समय वह इतनी भावाविष्ट हुई थी कि उसके मस्तक पर रक्तचंदन लगाते समय स्वामीजी रोमांचित होकर बोले थे, 'अहाहा ! देवी के तृतीय नेत्र को कहीं आघात तो नही हुआ?' **(क्रमशः)**

सरमा

आध्यात्मिक जिज्ञासा (६९)

स्वामी भूतेशानन्द

(४५)

प्रश्न – एक छोटी-सी घटना ज्ञात है, जब शरत महाराज क्रोधित हो गये थे। स्वामीजी कहते थे – उनका मस्तिष्क बहुत ठण्डा है। महाराज ! उस घटना को कहिये न।

महाराज – यह घटना श्रीमाँ के अन्तिम संस्कार के समय की है। अभी-अभी दाह-संस्कार समाप्त हुआ है। भक्त लोग चिताभस्म से श्रीमाँ के देहावशेष (अस्थि) को लेने के लिये उन्मत्त हो गये। शरत महाराज ने उसे देखा। मैं कभी भी उन्हें ऐसा चिल्लाते हुए नहीं देखा। वे चिल्लाकर कह रहे हैं – ''जो लोग इस देहावशेष को ले रहे हैं, वे लोग यदि प्रतिदिन ठीक से उसकी पूजा-अर्चना नहीं करेंगे, तो उनका सर्वनाश होगा ! सर्वनाश होगा !'' उन्होंने इतनी जोर से कहा था कि भक्तों ने डर से उस देहावशेष को उसी स्थान पर रख दिया।

– उस दिन उद्‌बोधन से बेलूड़ मठ की पद-यात्रा में आप थे या आप बेलूड़ मठ में ही थे?

महाराज – नहीं, मैं पदयात्रा में भाग लिया था। शरत् महाराज भी खाली पैर आये थे और सम्भवत: उनके पैर में उस दिन बहुत गर्मी थी (जुलाई में)। प्रखर सूर्य के ताप से पथ इतना गरम हो गया था कि कई लोगों के पैर में छाले पड़ गये थे।

– उद्‌बोधन से बेलूड़ मठ के बीच में क्या कहीं रुके थे? श्रीमाँ का शरीर क्या बीच में कहीं रखा गया था?

महाराज – नहीं।

– कैसे और कहाँ पर गंगा-पार किया गया?

महाराज – माँ के शरीर को पहले कुटी घाट में लाया गया, वहाँ नाव तैयार थी। बेलूड़ मठ की अपनी नौका थी। माँ का शरीर उस पर रखा गया। साधुओं ने स्वयं उस नौका को चलाया था। बाकी साधु और भक्त एक दूसरी बड़ी नौका से गंगा-पार हुए। स्वामी शंकरानन्द जी सभी क्रिया-कलापों की देख-रेख कर रहे थे।

– मात्र उसी एक दिन आपने शरत् महाराज को क्रोधित होते हुए देखा था?

महाराज – हाँ। वह भी एक कहने योग्य घटना है। महासम्मेलन (१९२६) के समय भी उन्होंने उच्च कण्ठ-स्वर में क्रोध व्यक्त किया था और कभी भी उन्होंने ऐसा क्रोध व्यक्त किया था।

एक दूसरी घटना कहता हूँ – एक बार जयरामबाटी से वापस आते समय एक रात के लिए चापडांगा में रहना पड़ा था और किसी प्रकार मेरी जप की माला मुझसे खो गई। सबेरे मार्टिन रेल से वापस आ रहा था। जप करने के लिए जब खोजने लगा, तो पता चला कि मैंने माला खो दी है। उससे बहुत दुखित हो गया था। अगले स्टेशन पर उतरकर चापाडांगा पैदल गया और वहाँ भी माला को न पाकर सीधे उद्‌बोधन चला आया। माला से जप नहीं होने के कारण दिनभर खाना-पीना हुआ नहीं। उसके बाद पैदल चलकर आया। बहुत भूख लगी थी। वापस आकर शरत् महाराज को सब बताया। सुनकर उन्होंने कहा – ''बन्दर ! माला खो गयी, तो क्या हुआ है ! क्या माला इतनी आवश्यक है? ये सातू ! इसे जल्दी से खाने को दो।'' उसके बाद उन्होंने फिर से नयी माला दी।

– आप कितनी बार क्रोधित हुए हैं?

महाराज – मुझे क्रोध आता है, किन्तु मैं छिपाकर रखता हूँ। (हँसते हैं) मैं सार्वजनिक रूप से व्यक्त नहीं करता।

– मैं एक घटना जानता हूँ, जब शरत् महाराज बहुत क्रोधित हो गये थे। यह घटना आलमबाजार मठ की है। पुरोहित ने कीचड़ लगे पैर से मन्दिर में प्रवेश किया था। शरत महाराज ने कीचड़ लगे पैर का चिह्न देखा। उन्होंने चिल्लाकर कहा – किसने ऐसा किया? उसके बाद जब पुरोहित सामने आए, तो उन्होंने तत्क्षण शान्त भाव से उन्हें कहा – ''ठीक है, आप जा सकते हैं।

महाराज – महाराज क्रोधित होने पर बहुत हुआ, तो बन्दर कहते थे।

– सुना हूँ कि ठाकुर के अन्य शिष्य भी तो बहुत डाँटते थे।

महाराज – हाँ, निश्चय ही। मैंने सुना है, सन्तोषानन्द जी ने कहा था – एक बार ठाकुर की तिथिपूजा के दिन भोग के लिए मछली बनेगी, उसका दायित्व भरत महाराज पर है। देखा गया कि वह मछली खो गयी है, खोजने पर नहीं मिल रही है। ठाकुर के कुछ सन्तान मठ-भवन में गंगाजी की ओर के बरामदे में बैठे हुए थे। शरत महाराज ने कहा – ''जो होना है, हो गया है, अभी जाल फेंककर मछली पकड़कर भोग की व्यवस्था करो।'' वे थोड़ा-सा भी उत्तेजित नहीं हुए।

प्रश्न – महाराज ! मेरा एक प्रश्न है। मैं गोपीनाथ कविराज के तान्त्रिक साधना और सिद्धान्त को पढ़ा हूँ। उसमें उन्होंने मन्त्र-जागृति के सम्बन्ध में विस्तृत चर्चा की है। अन्य ग्रन्थ में भी देखा हूँ। मन्त्र-जागृति क्या है, उसे हम लोग जानना चाहते हैं।

महाराज – जो मन्त्र तत्काल फल प्रदान करेगा।

– कैसे?

महाराज – मन्त्रोच्चारण के द्वारा। उससे ही किसी व्यक्ति का आध्यात्मिक उत्कर्ष होगा। मन्त्र चैतन्यस्वरूप में विराजमान रहता है।

– स्वामीजी ने कहा है – आज मैंने स्वर्णाक्षरों में मन्त्र का दर्शन किया है।

महाराज – मैं नहीं जानता किस भाषा में – बंगला या हिन्दी में? (हँसी)

– वहाँ कोई प्रक्रिया है क्या?

महाराज – प्रक्रिया? नहीं, कोई चेतन प्रक्रिया नहीं है। यदि तुम स्वाभाविक आन्तरिकता और एकाग्रता से मंत्र-जप करो, तो मंत्र चैतन्य होता है। तब वह फलप्रद होता है।

प्रश्न – हृदय को कैसे मन्त्र में प्रतिष्ठित किया जाय?

महाराज – यदि तुम्हारे पास हृदय हो, तभी तुम जानोगे कि कैसे उसे प्रतिष्ठित किया जाय। (हँसी) अधिकांश लोग हृदयहीन ही हैं।

प्रश्न – यदि एक पाश्चात्यवासी आपसे पूछे – वेदान्त जानने के लिए मुझे किस पुस्तक को पढ़ना चाहिए?

महाराज – स्वामीजी की पुस्तक।

– आपकी रुचि की क्या कोई अनुक्रमणिका है?

महाराज – वेदान्त के सम्बन्ध में स्वामीजी के कई व्याख्यान हैं। कोई विशेष पसन्द हो, ऐसी कोई बात नहीं है। जब मैं कॉलेज का छात्र था, तब शोभनलाल दासगुप्त नामक एक व्यक्ति ने मुझसे पूछा था – रामकृष्ण मिशन क्या है? क्या यह कोई समाजसेवी अथवा होमियोपैथी वेदान्त है? अब समझो बात ! समाज-सेवा और होमियोपैथी वेदान्त !

प्रश्न – आपके साथ उनका सम्पर्क कैसे हुआ? क्या वे आपलोगों के शिक्षक थे।

महाराज – हाँ, वे हमारे अध्यापक थे। उन्होंने एक दिन मुझसे पूछा कि मैं मुक्ति पाना चाहता हूँ या नहीं। मैंने उत्तर में कहा – नहीं। वैसा तो नहीं लगता है। उन्होंने कहा – तुम्हें मुक्ति प्राप्त करने की इच्छा करनी चाहिए। मैंने कहा – मेरी इच्छा नहीं है। यदि वैसा होता, तो मैं वेदान्त समझने के लिए आपके पास नहीं आता।

वास्तव में, वह समय विशेष विलक्षण था। ठीक याद नहीं है किस वर्ष की घटना है, लगता है, मैं उस समय दर्शनशास्त्र आनर्स का छात्र था। मेरी कक्षा में छह छात्र थे। इसीलिए अध्यापकों के साथ हमलोगों का घनिष्ठ सम्बन्ध था। वे कहते थे – अल्प आयु में उन्होंने 'वचनामृत' पढ़ा है, अभी उन्हें लगता है कि वे उस अवस्था से उन्नततर हुए हैं।

प्रश्न – कोई-कोई कहते हैं – जीवन के अन्तिम समय में स्वामीजी ने ईश्वरचन्द्र विद्यासागर का 'वर्ण परिचय' पढ़ा था। किसी ने पूछा था – ''आपने 'वर्ण परिचय' क्यों पढ़ा?'' उन्होंने उत्तर में कहा – 'बचपन में मैं इस पुस्तक को पढ़ा था और अभी इस पुस्तक के अध्ययन के द्वारा इसके लेखक को जानने का प्रयास कर रहा हूँ।'

महाराज – हाँ, मैं भी सुना हूँ। मैं विद्यासागर के विद्यालय में पढ़ा हूँ। तुम लोग विद्यासागर के विद्यालय के बारे में जानते हो। श्याम बाजार में है। मास्टर महाशय इसी विद्यालय में शिक्षक थे और श्रीरामकृष्ण के कई शिष्यों ने इस विद्यालय में शिक्षा प्राप्त की है – बाबूराम महाराज और भी कई हैं, पूर्ण ने भी विद्यासागर के विद्यालय में पढ़ाई की है। **(क्रमशः)**

साहसी बनो, साहसी बनो – मनुष्य सिर्फ एक बार ही मरा करता है। मेरे शिष्य कभी भी किसी भी प्रकार से कायर न बनें। – स्वामी विवेकानन्द

भजन एवं कविता

परम प्रेममय ओ परमेश्वर !

भानुदत्त त्रिपाठी 'मधुरेश', उत्तरप्रदेश

परम प्रेममय ओ परमेश्वर ! विनती को स्वीकार करो ।
मुझे और कुछ नहीं चाहिए, प्यार करो बस प्यार करो।।
बिना स्वार्थ समुदार लोक में तुम-सा कोई और नहीं,
बिना तुम्हारे, मिले सदा सुख ऐसा कोई ठौर नहीं,
हे करुणामय! करुणा करके करुणा का विस्तार करो ।
मुझे और कुछ नहीं चाहिए, प्यार करो बस प्यार करो।।
बिना तुम्हारी कृपा, न कोई भवसागर से पार हुआ,
कीर्ति-कामिनी-कंचन का ही सब पर भूत सवार हुआ,
हे मायापति! मायावन से मुझको तुम उस पार करो।
मुझे और कुछ नहीं चाहिए, प्यार करो बस प्यार करो ।।
प्रभो! तुम्हारे प्रेम-सिन्धु का कहीं दीखता छोर नहीं,
जहाँ तुम्हारी कृपा न बरसे, वहाँ सुखों का ठौर नहीं,
मेरे शिर पर हाथ धरो अब,नाथ! न और विचार करो ।
मुझे और कुछ नहीं चाहिए, प्यार करो बस प्यार करो ।।
तुम्हीं भक्ति हो, तुम्हीं भक्त हो तुम ही हो भगवान स्वयं,
तुम्हीं आदि हो, तुम्हीं अन्त हो तुम्हीं ज्ञान-विज्ञान स्वयं,
शरणागत, 'मधुरेश' जनों का भवनिधि से उद्धार करो ।
मुझे और कुछ नहीं चाहिये, प्यार करो बस प्यार करो ।।

तेरे हाथों सौप दिया ...

आनन्द कुमार पौराणिक, छत्तीसगढ़

तेरे हाथों सौंप दिया जीवन नौका, अब मुझे भला क्या भय ।
तू ही खेवनहार, तेरे हाथों में पतवार, मैं निश्चित हुआ निर्भय ।।
चाहे भावसागर पार लगा या नौका डुबा मझधार।
तूफान, झंझावात चले या उठे तीव्रतम ज्वार ।।
तुम मेरे सर्वस्व प्रभु, हे रक्षक करतार !
मैंने तो अब सौंप दिया है, तुझको अपना भार ।।
फिकर नहीं हारूं जीतूं, मिले पराजय या जय।
तू ही खेवनहार, तेरे हाथों में पतवार मैं निश्चिन्त हुआ निर्भय ।।

ठाकुर-महिमा

डॉ. ओमप्रकाश वर्मा, रायपुर

ठाकुर के नित नाम जपन से, भवसागर सब होते पार।
दीन-दुखी अरु पापी-तापी, सबका होता नित उद्धार।।
परम प्रेम से विमल हृदय से, जो जन करता व्यथित पुकार।
ठाकुर अपने दिव्य धाम से, आकर करते खुद उद्धार।।
विषयभोग में रमा हुआ मन, सहत यातना विविध प्रकार।
धर्मयुक्त जीवन को तजकर, दुख से करता हाहाकार।।
ठाकुर आओ कृपा करो प्रभु, तुम त्रिभुवन के परमाधार।
जीवन का दुख-द्वंद मिटाओ, हे युगप्रेरक युगावतार।।

जय शिव शंकर

दिनेश चन्द्र अवस्थी

जय शिव शंकर, जय बम शंकर, जय भोले भंडारी ।
जय अवघड़ दानी, महाअमानी, तुम हो जय शुभकारी।।
त्रिनेत्र उघारी, अनंग संघारी, तुम हो परम सुखकारी ।
दयानिधि सागर महाउजागर, करहु कृपा अघहारी।।
हे महादेव, बंदावैरागी, महायोगी, शिवकारी ।
जय शिव शंकर, जय बम शंकर, जय भोले भंडारी ।।
तुम मोक्ष प्रदाता, शुभ वरदाता, भक्तों के हितकारी ।
भय-ताप विनाशक, कष्ट निवारक संतन के हितकारी।।
दुखियों के दुखहर्ता, कर्ता-धर्ता तुम हो परम उदारी ।
'दिनेश' तुम्हें प्रणाम करता बन किंकर हे त्रिपुरारी ।।
जय शिव शंकर, जय बम शंकर, जय भोले भंडारी ।

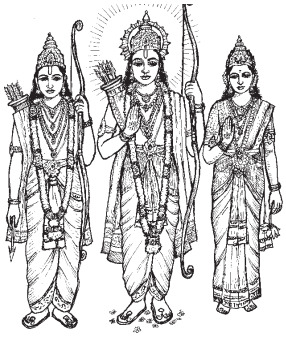

रामराज्य का स्वरूप (३/४)

पं. रामकिंकर उपाध्याय

(पं रामकिंकर महाराज श्रीरामचरितमानस के अप्रतिम विलक्षण व्याख्याकार थे। रामचरितमानस में रस है, इसे सभी जानते हैं और कहते हैं, किन्तु रामचरितमानस में रहस्य है, इसके उद्घाटक 'युगतुलसी' की उपाधि से विभूषित श्रीरामकिंकर जी महाराज थे। उन्होंने यह प्रवचन रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर के पावन प्रांगण में १९८९ में विवेकानन्द जयन्ती के उपलक्ष्य में दिया था। 'विवेक-ज्योति' हेतु इसका टेप से अनुलेखन स्वर्गीय श्री राजेन्द्र तिवारी जी और सम्पादन स्वामी प्रपत्त्यानन्द जी ने किया है। – सं.)

इसलिए रामायण में कहा गया कि हम विवेक से निश्चय करें कि धर्म का फल वैराग्य है –

धर्म तें बिरति जोग तें ग्याना।

ग्यान मोच्छप्रद बेद बखाना। ३/१५/१

धर्म का फल होना चाहिए वैराग्य। यही कसौटी है। जिसके जीवन में वैराग्य आ गया, उसके जीवन में धर्म स्थिर रहेगा और जिसके जीवन में वैराग्य नहीं आया, उसके जीवन में धर्म भी स्थिर नहीं रहेगा और आगे चलकर ज्ञान की दिशा में बढ़ने की भी सम्भावना नहीं है। महाराज मनु के चरित्र में यहीं पर दशरथजी के चरित्र में कमी रह गई, महाराज मनु भी बड़े धर्मात्मा हैं, महाराज दशरथ बड़े धर्मात्मा हैं, पर

होइ न बिषय बिराग भवन बसत भा चौथपन।

हृदयँ बहुत दुख लाग जनम गयउ हरि भगति बिनु।।

१/१४२/०

वैराग्य की वृत्ति का उदय नहीं हुआ। उसके पीछे एक बड़ा मनोवैज्ञानिक तर्क है। अनुकूलता में वैराग्य बड़ी कठिनाई से उत्पन्न होता है। वैराग्य बहुधा प्रतिकूलता में ही उत्पन्न होता है। मनु के राज्य में इतनी अनुकूलता थी कि उस अनुकूलता के कारण उनके जीवन में कभी भौतिक दुखों का अनुभव नहीं हुआ और उनके जीवन में वैराग्य का अभाव रहा। यह जो वैराग्य का अभाव है, यह उस जीवन में तो था ही, पर वे इतने विवेकी थे कि वैराग्य न होते हुए भी उन्होंने त्याग का आश्रय लिया। यह क्रमिक साधन का वर्णन है। उसका अभिप्राय है कि वैराग्य का सम्बन्ध मन से है और त्याग का सम्बन्ध बुद्धि से है। मन से कोई वस्तु छूट जाय, तो वैराग्य है और विचारपूर्वक किसी वस्तु को छोड़ दें, तो वह त्याग है। तो सहज भाव से वैराग्य होना चाहिए। वस्तु और विषयों से राग न रह जाय, तो यह वैराग्य की वृत्ति है। यह सहज वैराग्य है, रामायण में इसे बताया गया है। जहाँ पर बुद्धिपूर्वक, विचारपूर्वक छोड़ा गया हो। जैसे किसी व्यक्ति के मन में मिठाई खाने की लालसा ही उत्पन्न न हो, यह एक बात है और लालसा उत्पन्न हो, किन्तु विचार करके कि इससे रोग उत्पन्न हो सकता है, उसे छोड़ दे, तो वह त्याग है, वह विचारपूर्वक त्याग का परिचायक है। यह त्याग की वृत्ति महाराज मनु के जीवन में आती है और वे त्यागपूर्वक भक्ति मार्ग का अनुगमन भी करते हैं। उन्होंने निर्णय किया कि हम राज्य के भोगों का परित्याग करेंगे, राज्य का परित्याग करेंगे। लेकिन वैराग्य का अभाव होने के कारण वे पत्नी को साथ लेकर ही साधना के लिए वन की ओर जाते हैं। वे अकेले साधना करने के लिए नहीं जाते। राग का सदुपयोग मनु के जीवन में दिखाई देता है। वैराग्य तो नहीं था, राग था और राग का सदुपयोग उन्होंने दूसरे रूप में किया। क्या? जब भगवान उनके सामने प्रगट हुए, तो उन्होंने भगवान से मुक्ति की याचना नहीं की, अपितु भगवान से अनुरोध यही किया कि मेरे अनेक पुत्र हुए, पर अभी भी पुत्र की लालसा मेरे जीवन में शेष है। उसका उपाय अब यही है कि यदि आप ही मेरे पुत्र बन जायँ, तो मेरी लालसा भी पूरी हो जाये और उसके बाद उसका कोई दुष्परिणाम भी न हो। इस तरह से भक्तिमार्ग का जो क्रम है, प्राथमिक, माध्यमिक, उच्च, उच्चतर और उच्चतम, उसमें मध्य का जो स्तर है, त्याग मार्ग की जो विशेषता है, वह मनु के जीवन में दिखाई देता है। लेकिन इतना होते हुए भी जब भगवान वरदान देकर अन्तर्धान होने लगे, तब उन्होंने समझ लिया कि मनु ने त्याग के द्वारा वासनाओं को दबा दिया है, पर उस पर विजय नहीं पा सके हैं। इसलिए

भगवान मनु को आदेश देते हैं –

अब तुम्ह मम अनुसासन मानी।
बसहु जाइ सुरपति रजधानी।। १/१५०/८

अब इस शरीर को छोड़कर आप स्वर्ग में जाइए और स्वर्ग में जाकर भोगों को भोगिए। तो जो त्याग करके आया, उसको भगवान ने भोग करने के लिए स्वर्ग भेज दिया। इसमें भगवान का अभिप्राय यह था कि बुद्धिपूर्वक आपने अपने विषय-लालसा को दबा भी लिया और वह विषय-वासना आपके जीवन में दबी रहे, तो आगे कहीं वह विस्फोटक रूप धारण न कर ले, इसलिए आपने संसार के सुखों को भोग ही लिया है, अब एक बार स्वर्ग के सुखों को भी भोग लेने के बाद जब आप दशरथ के रूप में जन्म लेंगे, तो उस समय मैं आपका पुत्र बनूँगा और तब मनु दशरथ बने। मनु के रूप में संसार के समस्त सुखों को भोग लिया, स्वर्ग के भी सुख को भोग लिया और दशरथ बने, फिर भी वैराग्य नहीं हुआ। यह है वैराग्य की कठिनाई। वैराग्य होना कितना कठिन है, अगर इसी की व्याख्या की जाय, तो रामायण में ज्ञानदीपक प्रसंग की उन पंक्तियों को आप पढ़ें, तो देखेंगे कि वैराग्य की स्थिति तक पहुँचना कितना कठिन है और वह कितनी ऊँची स्थिति है ! चाहे किसी को विरक्त कह देने की परम्परा भले ही हो, पर विरक्त तो वह है –

कोटि बिरक्त मध्य श्रुति कहई। ७/५३/३

रामायण में कहा गया, वैराग्य कैसे आता है? बोले –

सात्त्विक श्रद्धा धेनु सुहाई।
जौं हरि कृपाँ हृदयँ बस आई।।
जप तप ब्रत जम नियम अपारा।
जे श्रुति कह सुभ धर्म अचारा।।
तेई तृन हरित चरै जब गाई।
भाव बच्छ सिसु पाइ पेन्हाई।।
नोइ निबृत्ति पात्र बिस्वासा।
निर्मल मन अहीर निज दासा।।
परम धर्ममय पय दुहि भाई।
अवटै अनल अकाम बनाई।।
तोष मरुत तब छमाँ जुड़ावै।
धृति सम जावनु देइ जमावै।।
मुदिताँ मथै बिचार मथानी।
दम अधार रजु सत्य सुबानी।। ७/११६/ख/९-१६

इतना लम्बी-चौड़ी प्रकिया है। इसमें एक-एक को पाना कितना कठिन है ! इतने के बाद, पहले गाय लाइए, चारा खिलाइए, बरतन लाइए, बछड़ा लाइए, दूध दुहिए, दूध को गरम कीजिए, उसे ठंडा कीजिए, दही जमाइए, श्रद्धा आवे, विवेक आवे, विचार आवे, निवृत्ति आवे, निष्कामता आवे, क्षमा आवे, धृति आवे, ये सारे काम आने के बाद तब

तब मथि काढ़ि लेइ नवनीता।

इतनी साधनाओं के बाद, इतने सद्गुणों के आने के बाद

बिमल बिराग सुभग सुपुनीता।। ७/११६/१६

जब इतनी उत्कृष्ट साधना हो जाती है, तब साधक के जीवन में विमल वैराग्य का उदय होता है। यह है वैराग्य !

सचमुच महाराज मनु न तो मनु के रूप में और न ही दशरथ के रूप में वैराग्य प्राप्त कर सके और वही रामराज्य में बाधा पड़ गई। क्या? उन्होंने निर्णय किया कि कल रामराज्य बनायेंगे, पर जैसा कि हमारी शास्त्रीय परम्परा है, महत्कार्य के लिए व्रत और संयमपूर्वक रात्रि व्यतीत करनी चाहिए। उसके स्थान पर महाराज दशरथ के मन में लालसा क्या उत्पन्न हुई? महारानी कैकेयी के महल में जाने की। महारानी कैकेयी के सौन्दर्य के प्रति वे आसक्ति नहीं छोड़ पाए। अगर इनमें वैराग्य होता और उस रात्रि में वे महारानी कैकेयी के महल में न जाकर एकान्त में व्यतीत कर दिये होते, तो रामराज्य बन जाता। पर वैराग्य के अभाव का परिणाम हो गया कि वे रात्रि में महारानी कैकेयी के महल में चले गये और वहाँ पहुँचकर सुन भी लिया कि महारानी महल में नहीं हैं, कोप-भवन में बैठी हुई हैं। अब भी सचेत हो जाते ! कोप का मार्ग व्यक्ति को कहाँ ले जाता है?

काम क्रोध मद लोभ सब नाथ नरक के पंथ। ५/३८

क्रोध का मार्ग नर्क ले जाता है। काम और लोभ का मार्ग नर्क ले जाता है। अब कोप-भवन में बैठी हुई हैं कैकेयी जी, वह तो नर्क का मार्ग हो गया। पर आसक्ति इतनी प्रबल है, सुन लिया कि महारानी कोप-भवन में बैठी हुई हैं, पैर भी काँप रहे हैं भय से, फिर चले जा रहे हैं –

भय बस अगहुड़ परइ न पाऊ। २/२४/१

शेष भाग पृष्ठ ४११ पर

श्रीरामकृष्ण-गीता (३)

स्वामी पूर्णानन्द, बेलूड़ मठ

(स्वामी पूर्णानन्द जी रामकृष्ण संघ के वरिष्ठ संन्यासी हैं। उन्होंने २९ वर्ष पूर्व में इस पावन श्रीरामकृष्ण-गीता ग्रन्थ का शुभारम्भ किया था। इसे सुनकर रामकृष्ण संघ के पूज्य वरिष्ठ संन्यासियों ने इसकी प्रशंसा की है। विवेक-ज्योति के पाठकों के लिए बंगला भाषा से इसका हिन्दी अनुवाद रामकृष्ण मिशन आश्रम, नारायणपुर के स्वामी कृष्णामृतानन्द जी ने की है। – सं.)

अहंकारो द्विधा ख्यातः पक्वश्चापक्व एव च।

ततोऽपक्वममत्वं यद् गृहकक्षसुतादिषु ।।१०।।

अन्वय : अहंकारः (अहंकार) द्विधा (दो प्रकार का) ख्यातः स्यात् (जाना जाता है या विख्यात है) पक्वः (पक्का) च (एवं) अपक्वः एव च (कच्चा भी) ततः (उनमें से) यत् (जो) ममत्वम् (मेरा यह भाव) गृह-कक्ष-सुत-आदिषु युक्तम् (घर, कमरा, पुत्र आदि से युक्त) तत् (यह) अपक्व-ममत्वम् (कच्चा मैं है) १०।।

अनुवाद : मैं अर्थात् अहंकार दो प्रकार का विद्यमान है – पक्का अहंकार एवं कच्चा अहंकार। उनमें से मेरा घर, मेरा कमरा, मेरा पुत्र आदि कच्चा अहंकार है ।। १०।।

तस्य दासः सुतश्चाहं पक्वमेतदहं भवेत् ।

ततः परं स नित्योऽहं मुक्तो ज्ञानस्वरूपकः ।।११।।

अन्वयः [अपि (और) अहम् (मैं) तस्य (उनका) दासः (दास हूँ) च (तथा) [अहम् तस्य (मैं उनका)] सुतः (संतान) एतत् (यह) अहम् (मैं) पक्वम् (पक्का) भवेत् (होता है) ततः (इसके) परम् (उपर) अहम् (मैं) सः (वही) नित्यः (नित्य) मुक्तः (मुक्त) ज्ञान-स्वरूपकः (ज्ञान-स्वरूप) ।।११।।

अनुवाद : और 'मैं उनका दास हूँ' तथा 'मैं उनकी संतान हूँ', यह अहंकार पक्का होता है | इसके भी ऊपर 'मैं' ही वही नित्य-मुक्त-ज्ञानस्वरूप हूँ ।।११।।

श्रीभक्त उवाच

ब्रूहि उद्धृत्य शास्त्राणां यत् सारं भगवंस्तथा ।

वाक्येनैकेन तन्मह्यं यथाहं ज्ञानमाप्नुयाम् ।।१२।।

अन्वय : श्रीभक्तः (भक्त ने) उवाच (कहा) भगवन् (हे ठाकुर) अहम् (मैं) यथा (जैसा) एकेन (एक) वाक्येन (वाक्य में) ज्ञानम् (ज्ञान) आप्नुयाम् (लाभ कर सकूँ) तथा (उस प्रकार) यत् (जिससे) शास्त्राणाम् (शास्त्र समूह) सारम् (सार) तत् (वह) उद्धृत्य (उद्धृत कर) मह्यम् (मुझे) ब्रूहि (बताइए) १२।।

अनुवाद : भक्त ने कहा – हे ठाकुर ! शास्त्रों के सार

को उद्धृत कर मुझे बताइए, जिससे मैं एक वाक्य में ज्ञान प्राप्त कर कर सकूँ ।। १२।।

श्रीमहाराज उवाच

ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या हीदमेवावधारय ।

तदा सोऽवददित्युक्त्वा तूष्णीं किल बभूव ह ।।१३।।

अन्वय : श्रीमहाराज : (श्रीमहाराज ने) उवाच (कहा) तदा (तब) सः (उन्होंने) अवदत् (कहा) ब्रह्म (ब्रह्म) सत्यम् (सत्य) जगत् (जगत) मिथ्या (मिथ्या) इदम् एव हि (इस बात की ही) अवधारय (अवधारणा करो) इति-उक्त्वा किल (यह बोलकर) तूष्णीम् बभूव ह (मौन हो गये) ।।१३।।

अनुवाद : श्रीमहाराज ने कहा – तब उन्होंने (श्रीरामकृष्ण देव ने) कहा – 'ब्रह्म सत्य जगत मिथ्या' इस बात की ही अवधारणा करो। यह बोलकर वे मौन हो गये ।।१३।।

श्रीरामकृष्ण उवाच

तावत् पुंसां ममाहंत्वं यावद्धि देहधारणम् ।

विद्यते किञ्चिदप्यस्य नैकान्ततोऽपगच्छति ।

मुक्तं तु पुरुषं तन्नाहं लवं बंधुमर्हति ।।१४।।

शेष भाग पृष्ठ ४२५ पर

साहस और बहादुरी

स्वामी पद्माक्षानन्द

एक अंग्रेज ने एक भारतीय युवक के कोट पर लगा बिल्ला खींच लेने का प्रयास किया। बिल्ला खींच लेने के पूर्व ही उस युवक ने उस अंग्रेज के मुँह पर कसकर तमाचा जड़ दिया। वह युवक इतने पर ही नहीं रुका, उसने उसको पटक दिया और उसकी छाती पर बैठ गया। अपने जेब से चाकू निकाला और चीखकर कहा, ''मेरे देश के सम्मान के प्रतीक को स्पर्श करने का दुस्साहस करोगे? क्या तुममें इतनी हिम्मत है?'' बेचारे अंग्रेज ने दया की भीख माँगते हुए उससे कहा, ''भगवान के लिए मुझे छोड़ दो, जाने दो। मैं फिर कभी ऐसा अपराध नहीं करूँगा।'' युवक को उसपर दया आ गयी और उसने उसको छोड़ दिया। साहस और बहादुरी की मिसाल उस युवक का नाम मदनलाल धींगड़ा था।

एक दिन धींगड़ा और उनके मित्र इंडिया हाऊस में एकत्रित थे। जापानियों के साहस और बलिदान की, उनके साहसिक गुणों की चर्चा चल रही थी। धींगड़ा को अपने मित्रों की यह वृत्ति अच्छी नहीं लगी। उन्होंने कहा, ''जापानियों की यह बहुत प्रशंसा हो गई। क्या तुम लोग समझते हो कि हिन्दू उनसे किसी भी प्रकार कम हैं? समय आने दो, हिन्दू अपना कर्तव्य सारे विश्व को दिखा देंगे।'' हँसी-मजाक की बातों ने गम्भीर मोड़ ले लिया। और यह निश्चय हो गया कि धींगड़ा के साहस की परीक्षा ली जाये। धींगड़ा इसके लिए तैयार हो गये। उनके एक मित्र ने एक मोटी सुई लाकर धींगड़ा से अपना पंजा मेज पर रखने को कहा। धींगड़ा ने अपना पंजा मेज पर रख दिया। सभी की आँखें पंजे पर लगी थीं। युवक ने धींगड़ा के पंजे में सुई चुभाना आरम्भ कर दिया। वह सुई दबाता गया, वह हाथ के तलवे की चमड़ी को चीरती हुई भीतर घुसती जा रही थी, लेकिन धींगड़ा के चेहरे पर न कोई वेदना के भाव थे और न कोई सिकन। युवक ने सुई और अधिक दबायी। अब वह पूरे पंजे को पार कर चुकी थी। उसकी नोक अब मेज में भी घुस गई। खून बह रहा था, भयंकर वेदना हो रही थी, परन्तु वे निश्चल भाव से अपने स्थान पर पत्थर की तरह खड़े हुए थे। सुई निकाल ली गई, तो वे मुस्करा रहे थे, मानों कुछ हुआ ही नहीं था। ऐसा था उनमें साहस और बहादुरी।

मदन लाल धींगड़ा

सर विलियम कर्जन वायली भारतीय युवकों को उनके राष्ट्र के प्रति जहर भरने का कार्य करता था। मदन ने कर्जन को उसके ही देश में मारने का अदम्य साहस का कार्य किया। १ जुलाई, १९०९ ई. को मदन ने कर्जन को लन्दन में गोली मारकर हत्या कर दी। उसके साथ कावसजी लालकाका जो कर्जन की सहायता करने के लिए आये, उसे भी गोली मार दी। दोनों की मृत्यु हो गयी। पुलिस जब मदन को पकड़ने लगी, तो मदन शान्त थे, कोई बेचैनी नहीं, कोई घबराहट नहीं। वे मुस्करा रहे थे। 'एक मिनट रुकिये मैं अपना चश्मा चढ़ा लूँ' कहा और चढ़ा भी लिया। मदन को विश्वास था कि उन्होंने जो भी किया, वह देशहित के लिए किया और यह उचित भी है, क्योंकि ये अंग्रेज हमारे देश को गुलाम बनाये हुए हैं। पुलिस उन्हें थाने में ले गयी। पुलिस की हिरासत में भी वे बिना किसी भय के रात को गहरी नींद में सोये।

हमारे जीवन में साहस और बहादुरी का बहुत ही महत्त्वपूर्ण स्थान होता है। मदन लाल धींगड़ा का साहस और बहादुरी हमें प्रेरणा देती है कि हम भी अपने जीवन में साहस और बहादुरी से बड़े से बड़े खराब परिस्थितियों में भी शान्त और निर्भय बने रहकर सरलता से बाहर निकल सकते हैं। ○○○

एक दृष्टि हमारी प्राचीन शिक्षा-व्यवस्था पर भी दें

स्वामी अलोकानन्द, रामकृष्ण अद्वैत आश्रम, वाराणसी

प्राचीन काल की शिक्षा पद्धति की कहानी के आवरण में जिन प्रक्रियाओं को हम पाते हैं, वह है गुरुवाक्य में विश्वास रूपी श्रद्धा, मन की एकाग्रता, अध्यवसाय एवं आत्म विकास के लिए शिक्षा। गीता में भगवान कहते हैं, **तद्विद्धि प्रणिपातेन, परिप्रश्नेन, सेवया**। उस तत्त्व को प्राणिपात अर्थात् विनय, परिप्रश्न अर्थात् जिज्ञासा तथा सेवा अर्थात् अनुगत भाव की सहायता से जानना होगा। वह तत्त्व अर्थात् लक्ष्य वस्तु। जिस किसी भी लक्ष्य तक पहुँचने के लिए विनय, परिप्रश्न अर्थात् जिज्ञासा तथा सेवा अर्थात् अनुगत भाव की नितान्त आवश्यकता होती है। महाभारत में एकलव्य ने इन्हीं तीनों गुणों की सहायता से गुरु द्रोण की मूर्ति बनाकर संसार में एक अतुलनीय धनुर्विद्या प्राप्त की थी, ऐसा देखा गया है।

किसी लक्ष्य तक पहुँचने के लिए पहले हमें उस लक्ष्य विशेष को निश्चित करना होगा। विद्यालय के निबन्ध-लेखन में **Aim in your life** अथवा तुम्हारे जीवन का लक्ष्य –यह विषय प्राय: सभी छात्रों का परिचित विषय है। निबन्ध लिखते समय पुस्तक में लिखित निबन्ध ही सब छात्र लिख देते हैं। केवल डॉक्टर, शिक्षक इत्यादि शब्दों को परिवर्तित कर लेना होता है। फलस्वरूप इस प्रकार से रट लेना वैसे ही हास्यास्पद होता है, जिस प्रकार गाय का चित्र बनाने के प्रश्नपत्र में नदी का चित्र बना देना हास्यास्पद होता है।

उस निबन्ध में हमने जो कुछ भी क्यों न लिख दिया हो, वास्तविक जीवन के क्षेत्र में हमारी शिक्षा का लक्ष्य निश्चित करना आवश्यक है। मित्रों के साथ अड्डेबाजी, सिनेमा, गपशप, दोपहर में शयन आदि सभी प्रकार के विलास को छोड़कर, विद्यालय, महाविद्यालय, विश्वविद्यालय में जाकर दिन-प्रतिदिन शिक्षक, अध्यापक का व्याख्यान सुनना, नोट लिखना, पुस्तकालय में जाकर पढ़ने जैसा परिश्रम किसलिए करना? यदि इसका कोई उद्देश्य न रहे, तो वह क्यों इतना परिश्रम करेगा? शास्त्र कहता है, **प्रयोजनमनुद्दिश्य मूर्खोऽपि न प्रवर्तेत** – प्रयोजन के बिना मूर्ख भी किसी कार्य में प्रवृत्त नहीं होता।

इसलिए पहले हमारी शिक्षा का उद्देश्य क्या है, इसको निश्चित करना होगा। सम्प्रति हर छात्र से यदि हम पूछें कि उनकी शिक्षा का क्या उद्देश्य है, तो देखा जाता है कि कोई डॉक्टर बनना चाहता है, कोई शिक्षक बनना चाहता है, कोई वकील बनना चाहता है, कोई राजनेता बनना चाहता है, तो कोई बहुत धन कमाकर विलासमय जीवन का स्वप्न देखता है। ये चीजें जीवन को चलाने के लिए भले ही आवश्यक हों, किन्तु ये हमें मानसिक शान्ति नहीं दे सकतीं। ये हमारी कामनाओं को और भी बढ़ा देती हैं। जो लखपति है, वह करोड़पति होना चाहता है, जो करोड़पति है, वह और भी अधिक चाहता है। 'हाय, जगत् में वही अधिक चाहे, जिसको मिले प्रभूत प्रचुर।' इसके कारण शुरू होती है प्रतिद्वन्द्विता। एक को बिना छोटा किये, दूसरा बड़ा नहीं हो सकता। सभी क्षेत्रों में यही प्रतिद्वन्द्विता संसार में संघर्ष, मार-काट, ईर्ष्या-द्वेष पैदा करके एक अशान्त परिस्थिति की

ओर ले जाती है। महाभारत में ययाति भोग द्वारा भोग को शान्त करने में असफल होकर हमें बता गए थे –

न जातु कामः कामानामुपभोगेन शाम्यति।
हविषा कृष्णवर्त्मेव भूय एवाभिवर्द्धते।।

उपनिषद हमें नित्य साधना करने को कह चुके हैं, **भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम देवाः, भद्रं** ...।'' शास्त्रों ने हमें प्रार्थना करना सिखाया है – **'सर्वेऽत्र सुखिनः सन्तु**...। किन्तु हम यह सब भूलकर, स्वार्थपरायण होकर सारे संसार की भोग-सामग्री को अपने अधिकार में रखने हेतु प्रयास करते हैं। इससे आज सर्वत्र कलह, कोलाहल है, अशान्ति का नगाड़ा बज रहा है, अशान्ति की आँधी बहती चली जा रही है।

जीवन-धारण के लिए धन अपेक्षित है, किन्तु उस अर्थ के उपार्जन के लिये नैतिक अवनति की दशा को प्राप्त कर लेना अनुचित है।

आजकल सर्वत्र कई प्रकार के आर्थिक घोटाले दिखते हैं। इसके कर्ता-धर्ता सब तथाकथित उच्च पदाधिकारी, उच्च शिक्षित लोग हैं। उनकी शिक्षा के द्वारा इस तरह की नैतिक अवनति हो गई। स्वामीजी इसीलिए आत्मिक विकास, पूर्णत्व के विकास को शिक्षा कहते हैं। उपनिषद के 'सर्वं खल्विदं ब्रह्म' भाव को जब कोई समग्र रूप से आत्मसात् करता है, तभी व्यक्ति की पूर्णता का विकास होता है। जब वह पूर्णता में प्रतिष्ठित हो जाता है, तो संसार में भेद-भाव नहीं रहता, भेद-भाव नहीं रहने से विवाद नहीं होता – **न ततो विजुगुप्सते**। इससे संसार में शान्ति स्थापित होती है। तब सभी दूसरों की सहायता के लिये कमर कसकर खड़े हो जाते हैं। 'हम सब एक-दूसरे के लिये हैं।' तब यह भाव सर्वत्र व्याप्त हो जाता है।

जैसे कुछ अच्छा प्राप्त कर लेने पर हमें आनन्द मिलता है, वैसे ही दूसरों को भी होता है। पर जिससे हमें दुख-कष्ट का अनुभव होता है, दूसरों को भी वही होता है। इसलिए हमारा अपना सुख-दुख जब सबके साथ समान भाव से अनुभूत होगा, तभी संसार में एक महान मिलन का आनन्द होता है। वेदान्त में एक अद्वितीय तत्त्व के अनुभव के माध्यम से इस पारस्परिक सौहार्द, शान्ति और मैत्री के तत्त्व को अभिव्यक्त किया गया है। ○○○

पृष्ठ ४०७ का शेष भाग

गोस्वामीजी ने आलोचना की –

सुरपति बसइ बाहँबल जाकें।
नरपति सकल रहहिं रूख ताकें।। २/२४/१-२
सो सुनि तिय रिस गएउ सुखाई।
देखहु काम प्रताप बड़ाई।। २/२४/३

यह है काम का प्रताप कि इतना बड़ा महापुरुष, जिसने इतने हजारों वर्ष तक तपस्या की मनु के रूप में, स्वर्ग के भोगों को भोगा, इस जीवन में भी इतने भोगों को भोगने के बाद भी भोग-लालसा अभी मिटी नहीं है। जब कैकेयी के पास कोपभवन में पहुँचे, तो कैकेयी को प्रसन्न करने के लिये क्या कहने लगे? बोले –

जानसि मोर सुभाउ बरोरू।
मनु तव आनन चंद चकोरू।। २/२५/४

कैकेयी, तुम तो जानती हो कि तुम्हारा मुख चन्द्रमा है और मैं चकोर हूँ। बस, अनर्थ हो गया। क्या? बोले जो व्यक्ति रामचन्द्र का भी चकोर बने और कामचन्द्र का भी चकोर बने, वह राम-राज्य नहीं बना सकता। बस, यह वैराग्य की भूमिका है। यहीं से श्रीभरत की भूमिका प्रारम्भ होती है।

तेहिं पुर बसत भरत बिनु रागा। २/३२३/७

वस्तुतः रामराज्य की स्थापना कितनी कठिन है ! इतने प्रयत्नों के बाद भी रामराज्य की स्थापना नहीं हो सकी। इसके लिए चाहिए वैराग्य की साधना और चरित्र की साधना, जो श्रीभरत के चरित्र में है। इसकी चर्चा हम आगे करेंगे।

बोलिए सियावर रामचन्द्र की जय ! **(क्रमशः)**

यह देश गिर अवश्य गया है, परन्तु निश्चय फिर उठेगा और ऐसा उठेगा कि संसार देखकर आश्चर्यचकित हो जायेगा। देखा नहीं है, नदी या समुद्र में लहरें जितनी नीचे उतरती हैं, उसके बाद उतनी ही जोर से ऊपर उठती हैं। यहाँ पर भी उसी प्रकार होगा। देखता नहीं है, पूर्वाकाश में अरुणोदय हुआ है, सूर्य उदित होने में अब अधिक विलम्ब नहीं है।

इन दो चीजों से बचे रहना – अधिकार-लालसा और ईर्ष्या। सदा आत्मविश्वास का अभ्यास करना।

– स्वामी विवेकानन्द

शिकागो धर्म-महासम्मेलन का प्रभाव

स्वामी गुणदानन्द, रामकृष्ण मठ, नागपुर

११ सितम्बर, १८९३ में अमेरिका के आर्ट इन्स्टिट्यूट ऑफ शिकागो में विश्व के सभी राष्ट्रों के धार्मिक नेताओं के प्रतिनिधियों का एक धर्म-महासम्मेलन प्रारम्भ हुआ। मानवीय संस्कृति के उच्चतर स्तर सर्वधर्म-समन्वय की भावना की नींव रखने हेतु इस महान सभा का आयोजन हुआ। प्रथम शिकागो धर्ममहासभा विश्व कोलोम्बियन प्रदर्शनी से सुसम्बद्ध थी। इस धर्ममहासभा ने स्वामी विवेकानन्द के जीवन के लिए नई दृष्टि एवं दिशा प्रदान की और इससे न केवल उनके भारतीय कार्य को गति मिली, बल्कि इस सभा ने उन्हें उनके वैश्विक ध्येय (World Misson) से परिचित करा दिया । एक बार उन्होंने कहा था – मेरे पास भी पाश्चात्य के लिये संदेश है, जैसाकि बुद्ध का पूर्व के लिये था । मेरी लुई बर्क ने अपनी पुस्तक Swami Vivekananda in the West : New Discoveries में लिखा है, ''विश्व मंच पर स्वामी विवेकानन्द, अमेरिकावासियों के लिए, ... मरुस्थल में निर्गत शुद्ध, जीवनदायी जल के समान थे ।''

भगिनि निवेदिता ने विवेकानन्द साहित्य की भूमिका में लिखा है, ''वह काल इस सम्भाव्यता से परिपक्व हो चुका था।'' एक नई दुनिया का सृजन हो रहा था और नए विचारों, आविष्कारों का विप्लव इस नई दुनिया में प्रवाहित हो रहा था। स्वामी विवेकानन्द ने विश्व-रंगमंच पर उस यथार्थ काल में प्रवेश किया, जब वैश्विक परिवर्तन की लहर पश्चिमी तट पर पहुँच रही थी। निवेदिता ने 'शिकागो' के बारे में विवेचना की है : ''यूरोप के प्रत्येक राष्ट्र ने अमेरिका को, विशेषकर शिकागो को जहाँ धर्म महासभा का आयोजन हुआ, अपने मानवीय योगदान से आप्लावित किया।'' शिकागो, जहाँ महासभा का आतिथेय किया गया, ने सभी बुद्धिजीवियों को, विशेषकर तत्कालीन पश्चिमी राष्ट्रों को अपनी ओर आकर्षित किया। भगिनि निवेदिता की बहुमूल्य व्याख्या की कोई तुलना नहीं की जा सकती है। उन्होंने इस दृश्य को इस प्रकार देखा, ''तब ये ही थे, वे दो मानस प्लावन, प्राच्य और अधुनातन, चिन्तन के प्रबल महानद। धर्ममहासभा के मंच पर गैरिक वसनमण्डित यह परिव्राजक एक क्षण के लिए इन दोनों प्लावन का संगम केन्द्र बना गया। ऐसी मनोवैज्ञानिकता की भूमि थी, ऐसा ही मानस सागर था, तरुण, तुमुल, अपनी शक्ति और आत्मश्विास से उफनता, फिर भी, जिज्ञासु तथा सतर्क, जो भाषण प्रारम्भ करते समय स्वामी विवेकानन्द के सम्मुख था। वे स्वयं घनीभूत भारतवर्ष के प्रतिनिधि थे।

(वि. सा. भूमिका, पृष्ठ, झ)

महासभा के श्रोताओं ने चाहे यह अनुभव किया हो या नहीं कि वे एक ऐसे ऐतिहासिक क्षण के सहभागी बन रहे हैं, जो सर्वधर्म संवाद और अन्त:विषय संवाद तथा विरोधी सिद्धान्तों के संवाद के इतिहास के लिए बहुत महत्त्वपूर्ण था। 'अमेरिका के बहनो और भाइयो', इन कुछ ही शब्दों के सम्बोधन से स्वामी विवेकानन्द ने एक इतिहास रच डाला। वे बोलते गये, ''जिस सौहार्द और स्नेह के साथ आपने हम लोगों का स्वागत किया है, उसके प्रति आभार प्रकट करने के निमित्त खड़े होते समय मेरा हृदय अवर्णनीय हर्ष से पूर्ण हो रहा है। हमलोग सब धर्मों के प्रति केवल सहिष्णुता में ही विश्वास नहीं ही करते, अपितु समस्त धर्मों को सच्चा मानकर स्वीकार करते हैं। (वि. सा. प्रखम खण्ड, पृष्ठ ३)

''मैं एक ऐसे धर्म के अनुयायी होने पर गर्व अनुभव करता हूँ, जिसने संसार को सहिष्णुता और सार्वभौमिकता दोनों की ही शिक्षा दी है'', स्वामी विवेकानन्द के इस वक्तव्य के बारे में कुछ टिप्णियाँ प्रस्तुत हैं –

१. भारत एशिया में यहूदी सम्प्रदाय की चौथी बड़ी जनसंख्यावाला देश है। भारत में निवास करनेवाला केवल यही एक ऐसा यहूदी सम्प्रदाय है, जिसने यहूदी विरोधी शत्रुता, पक्षपात और भेदभाव का सामना नहीं किया। यहूदी ७०वीं C.E में सबसे पहले भारत में आए, जब रोम ने उनके मन्दिरों को नष्ट कर दिया । यद्यपि भारत में मुख्यत: सात यहूदी सम्प्रदायों में से बेन इजराइल सम्प्रदाय समेत अधिकांश सम्प्रदायों को इजराइल की लुप्त आदिवासी से सम्बन्धित माना जाता है, जिन्होंने रोम से पलायन कर पूर्ववर्ती भारत में प्रवास किया। ६५१ में, जरथुस्ट्र (फारसी) शरणार्थी परसिया से आए, मुसलमानों ने परसिया के सासनिया साम्राज्य (नव-फारसी) पर विजय प्राप्त की और तलवार के बल पर पूरी तरह से धर्म परिवर्तन करना चाहा, इसलिए मुसलमान साम्राज्य के उदय होने पर उन्होंने वहाँ से पलायन किया। उन्हें फारसी का नाम दिया गया, क्योंकि वे परसिया से आए थे। उनका (फारसियों का) जहाज गुजरात के वलसाड जिले के संजाण में आया। शरणार्थियों को संजाण के राजा के पास ले जाया गया, इन लोगों ने उनसे उन्हें शरण देने का अनुरोध किया। भाषा एक समान न होने के कारण, दोनों सम्प्रदाय के लोग संकेतों के द्वारा एक-दूसरे से बातचीत करते थे। राजा ने उन्हें दूध से भरा एक गिलास भेजा, जो यह इंगित करता था कि राज्य में उनके लिए कोई स्थान नहीं है। फारसियों ने एक चमच चीनी एक गिलास दूध में मिलायी, जिसका अर्थ यह था कि हम दूध में चीनी की तरह घुल जायेंगे और उनके राज्य को और भी समृद्धशाली बनाएँगे। आज भी वे अपने वचन का अनुपालन कर रहे हैं। रामकृष्ण संघ के १३वें महाध्यक्ष पूजनीय स्वामी रंगनाथानन्दजी महाराज ने इस विनिमय का इस प्रकार वर्णन किया, ...''इस तरह से एक सभ्य जाति दूसरी सभ्य जाति का सत्कार करती है।''

२. जब इजराइल पहली बार अस्तित्व में आया, तो कुछ उत्साही भारतीय यहूदी उस नव-निर्मित राष्ट्र में बसने के लिए गए। वहाँ के यहूदियों के अप्रतिकारपूर्वक व्यवहार को देखकर उनका भ्रम भंग हो गया। इससे उन्हें यह पता चला कि भारत में पीड़ितों और सताए गए लोगों को आश्रय देने की परम्परा आज भी जारी है। हाल ही का एक उदाहरण है, पौलेंड के शरणार्थी । उन्हें रूस के द्वारा गुलग (बंधुआ मजदूर शिविर) नामक स्थान में निर्वासित किया गया और १९४२ में वहाँ से भाग निकलने के बाद भारत में उन्हें अस्थाई शिविरों में बसाया गया। भारत की तत्कालीन ब्रिटिश सरकार उन्हें शरण देने के लिए अनिच्छुक थी। यद्यपि कुछ स्वशासी रियासतों ने उन्हें शरण देने का प्रस्ताव रखा। नवानगर के महाराजा जाम साहेब दिग्विजयसिंह जडेजा ने सबसे पहले यह पहल की। शरणार्थियों के बच्चों की दुर्दशा के बारे में सुनकर उन्होंने पहले तुरन्त ५००, फिर शीघ्र ही १००० तक संख्या बढ़ाई और उन्हें शरण देने के लिए समुद्र के किनारे शिविर बनाए। जब बच्चे आए, तो राजा ने उनका यह कहकर अभिवादन किया कि वे 'बापू' हैं, उनके पिता हैं। जब युद्ध समाप्त हुआ, तो 'बापू' ने बच्चों को मास्को द्वारा शासित, वही शासन जिसने उन्हें साइबेरिया के लिए निर्वासित किया था, साम्राज्यवादी पौलेंड में जबरन वापसी से बचाने के लिए उनको गोद ले लिया। उसके बाद कोल्हापुर की रियासत ने ५००० लोगों को विशेषकर महिलाओं और बच्चों के लिए एक स्थान उपलब्ध कराया, जहाँ एक पारिवारिक शिविर, वालिवडे में स्थापित किया गया। पौलेंड के शरणार्थी में से एक बच्चा बाद में पौलेंड का प्रधानमन्त्री बन गया। यहाँ तक कि आज भी वे जामनगर के महाराज को श्रद्धांजलि देने के लिए भारत आते हैं। पौलेंड की गलियों के नाम आज भी बापूजी के नाम पर रखे जाते हैं तथा उनके नाम के स्मारक बनाए जाते हैं।

३. १९५९ में, १४वें दलाई लामा ने अपनी सरकार सहित तिब्बत से पलायन किया और भारत में शरण ली। १९५९ से १९६०, लगभग ८०,००० तिब्बतियों ने अनुगमन किया। २००३ में, भारत के भूतपूर्व राष्ट्रपति डॉ. अब्दुल कलाम अरुणाचल प्रदेश के त्वाँग में ४०० वर्ष पुराने बौद्ध मठ देखने गए, उन्होंने वहाँ के मठाधीश से त्वाँग की अपूर्व शान्ति के रहस्य के बारे में पूछा। मठाधीश ने उत्तर दिया, ''आप भारत के राष्ट्रपति हैं। आप सब कुछ जानते हैं...'', वह प्रश्न का उत्तर नहीं देना चाहते थे। परन्तु डॉ. अब्दुल कलाम के पुन: पूछने पर मठाधीश ने सभी ३०० भिक्षुओं को बुद्धदेव की प्रतिमा के चारों और बैठाकर यह सन्देश दिया – ''यदि भारत के ३००० वर्ष पुराने इतिहास को देखें, तो आप पाएँगे कि यह राष्ट्र सदैव शान्ति का दूत रहा है। यह राष्ट्र शान्ति के लिए कार्यरत है, शान्ति का आह्वान करता है और शान्ति के लिए ही लिए जीता है।'' सबसे वृद्ध भिक्षु जिनकी आयु लगभग ११० वर्ष थी, ने डॉ. कलाम से कहा, ईश्वर इस राष्ट्र से प्रेम करता है। इस देश ने कभी किसी पर आक्रमण नहीं किया, इसलिए इसकी संस्कृति का कभी विनाश नहीं हो सकता अर्थात् यह देश कभी मर नहीं सकता।

शिकागो विश्वधर्म सम्मेलन में स्वामी विवेकानन्द

स्वामी विवेकानन्द की उद्घोषणा है – हम हिन्दू केवल सहिष्णु ही नहीं हैं, हम अन्य धर्मों के साथ – मुसलमानों की मस्जिद में नमाज पढ़कर, पारसियों की अग्नि की उपासना करके तथा ईसाइयों के क्रूस के सम्मुख नतमस्तक होकर उनसे एकात्म हो जाते हैं। हम जानते हैं कि निम्नतम जड़-पूजावाद से लेकर उच्चतम निर्गुण अद्वैतवाद तक सारे धर्म समान रूप से असीम को समझने और उनका साक्षात्कार करने के निमित्त मानवीय आत्मा के विविध प्रयास हैं । अत: हम इन सुमनों को संचित करते हैं और उन सबको प्रेमसूत्र में बाँधकर आराधना के निमित्त एक अद्भुत स्तवक निर्माण करते हैं । फलत: भारतीय इतिहास विश्व को ऐसे अत्युत्तम उदाहरणों का उद्धरण देता है। (वि. सा., प्रथम खण्ड, भूमिका)

स्वामीजी ने सार्वजनीन धर्म की एक नई व्याख्या दी – चाहे जितने भी विविध पथ हो, सभी मनुष्य केवल ईश्वर को पाने का प्रयास कर रहे हैं । (वि. सा., प्रथम खण्ड)

प्रत्येक धर्मों के ध्वज पर :

इस धर्ममहासभा ने जगत् के समक्ष यदि कुछ प्रदर्शित किया है, तो वह यह है : उसने यह सिद्ध कर दिया है कि शुद्धता, पवित्रता और दयाशीलता किसी सम्प्रदाय विशेष की ऐकान्तिक सम्पत्ति नहीं है, एवं प्रत्येक धर्म ने श्रेष्ठ एवं अतिशय उन्नत चरित्र स्त्री-पुरुषों को जन्म दिया है। अब इन प्रत्यक्ष प्रमाणों के बावजूद यदि कोई ऐसा स्वप्न देखे कि अन्यान्य सारे धर्म नष्ट हो जायेंगे और उनका धर्म ही केवल जीवित रहेगा, तो उस पर मैं अपने हृदय के अन्तस्तल से दया करता हूँ और उसे स्पष्ट बतला देता हूँ कि शीघ्र ही, सारे प्रतिरोधों के बावजूद, प्रत्येक धर्म की पताका पर यह लिखा रहेगा – 'संघर्ष नहीं – सहायता'; 'विनाश नहीं – ग्रहण;' 'मतभेद और कलह नहीं – समन्वय और शान्ति'।''

धर्ममहासभा सर्वधर्म और अन्त:विषयक अध्ययन का केन्द्र बिन्दु सिद्ध हुई।

सर्वधर्म संवाद का अर्थ है, विभिन्न धार्मिक मतों के लोगों (या आध्यात्मिक या मानवीय आस्था, दोनों व्यक्तिगत एवं संस्थागत स्तर पर) के मध्य सहकारी, रचनात्मक और सकारात्मक पारस्परिक विचार-विमर्श। स्वयं के धर्म को ही सत्य मानने की बजाए, एक-दूसरे को स्वीकार करने की भावना बढ़ाने के लिए संवाद प्राय: विभिन्न धर्मों अथवा मतों के मध्य आपसी समझदारी को बढ़ावा देता है।

१८९३ की धर्ममहासभा को प्राय: ''सर्वधर्म का जनक माना जाता है।'' धार्मिक नेताओं के अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन को संगठित किया गया। १८९३ में इस सम्मेलन की पहली बैठक हुई, तब से लेकर अभी तक ९ बैठकें हुई हैं। अगली बैठक १७-१८ अक्तूबर, २०२१ में होनी सुनिश्चित हुई है।

संयुक्त राष्ट्र सांस्कृतिक गठबंधन, अन्तर्सांस्कृतिक तथा

सर्वधर्म को बढ़ावा देने, अहिंसा रोकने और सामाजिक सामंजस्य का समर्थन करने की एक पहल है। २००५ में, ५९वीं संयुक्त राष्ट्र की आमसभा में स्पेन के प्रधानमन्त्री 'जोस लुइस रोड्रिगेज जापात्रो' ने UNAOC में प्रस्ताव रखा। स्वामीजी के आदर्शों की UNESCO से बौद्धिक एवं नैतिक आत्मीयता है। १९८७-१९९९ तक UNESCO के महानिदेशक, फेडरिक मेयर ने स्पेन में आयोजित धर्ममहासभा के शताब्दी महासमारोह में कहा : ''मैं १८९७ में स्वामी विवेकानन्द द्वारा स्थापित रामकृष्ण मिशन और १९४५ में स्थापित यूनेस्को की समरूपता को देखकर आश्चार्यचकित हूँ। दोनों संस्थाओं का केन्द्र-बिन्दु मनुष्य का विकास है। दोनों संस्थाओं ने शान्ति और लोकतन्त्र के निर्माण के लिए सहिष्णुता को अपनी कार्यावली के शिखर पर रखा है। दोनों ही मानव संस्कृति और समाज की विविधता को सार्वजनिक विरासत का आवश्यक पहलू मानती हैं।

नियति की यह बड़ी विडम्बना रही कि स्वामी विवेकानन्द के सहिष्णुता एवं एकता के सन्देश के उद्धरण की वर्षगाँठ के दिन अनिष्टकारी ताकतों के हमले से ११ सितम्बर, २००१ को न्यूयॉर्क के विश्व व्यापार केन्द्र के Twin Tower को विध्वंस किया गया और वर्जिनिया के ऐरिलिंगटन में पेन्टागन के आंशिक विध्वंस से कई लोगों मारे गए। यद्यपि, ९/११ के बाद सर्वधर्म भावधारा और भी तीव्र हो गई। निश्चित रूप से स्वामीजी की वाणी पर लोगों का विश्वास बढ़ रहा है। दलाईलामा ने एक बार स्वामीजी के बारे में कहा, ''उनके पास अपूर्व दूरदर्शिता थी। मैं यह अनुभव करता हूँ कि मैं अनुयायी हूँ और सर्वधर्म-समन्वय के उनके सपने को कार्यान्वित करने का प्रयत्न कर रहा हूँ।''

अमेरिका के पूर्व राष्ट्रपति, बराक ओबामा के अनुसार, ''धार्मिक-मतवाद को बढ़ावा देने की अपेक्षा, सभी जाति, रंग, पंथ के लोगों को अंगीकार करना ही भारत की शक्ति, भारत का वास्तविक आदर्श है। आज इसकी विविधता इस सदन में दिखाई देती है। यह धर्मों की उदात्तता ही है, जिसका प्रस्तुतिकरण एक शताब्दी से अधिक पहले मेरे गृहनगर शिकागो में विश्वविख्यात स्वामी विवेकानन्द ने किया।''

स्वामी विवेकानन्द धर्ममहासभा के यर्थाथ भाव, एकता एवं समन्वय की भावना के मूर्तरूप थे। बलोग्ट जैसे व्यक्ति उन्हें पैगम्बर के रूप में मानते थे, ''प्रारम्भ में ही उन्होंने लोगों के हृदय को अपनी ओजस्विता से छू लिया। पुरुष और महिलाएँ अभिवादन के लिए उनकी ओर दौड़ते, शिकागो की गलियों में भीड़ उनके साथ चलती; सैंकड़ों लोग उनके फोटो के सम्मुख उन्हें नमन करते।''

आर्ट इन्स्टिट्यूट आज भी स्वामी विवेकानन्द जी की स्मृति में उनके अति प्रेरणादायी शब्द, 'अमेरिका के बहनो और भाइयो' को सजावटी विज्ञापन-पटों पर और उनके भाषण की पंक्तियों को इलेक्ट्रॉनिक बोर्ड के द्वारा प्रदर्शित करता है। कोलम्बियन प्रदर्शनी के त्रिशताब्दी समारोह के अवसर पर, कोलम्बस हॉल में भारत के इस महान् संन्यासी को अति विशिष्ट सम्मान प्रदान किया गया। हाल ही में शिकागो के मेयर ने ११ सितम्बर को 'विवेकानन्द दिवस' घोषित किया है।

भारत पर प्रभाव

स्वामीजी के संज्ञान में लाए बिना उनके अभिभाषण की प्रभावशालिता को अमेरिका से टेलिग्राफ द्वारा निद्रित भारत में प्रेषित किया गया। भोर के समय, जब देश जागा, उनके भाषण की प्रभावशालिता का समाचार विद्युत के चमकने के

कोलकाता में स्वामीजी का स्वागत

शेष भाग पृष्ठ ४२१ पर

सारगाछी की स्मृतियाँ (१०७)

स्वामी सुहितानन्द

(स्वामी सुहितानन्द जी महाराज रामकृष्ण मठ-मिशन के उपाध्यक्ष हैं। महाराजजी जगजननी श्रीमाँ सारदा देवी के शिष्य स्वामी प्रेमेशानन्द जी महाराज के अनन्य निष्ठावान सेवक थे। उन्होंने समय-समय पर महाराजजी के साथ हुए वार्तालापों के कुछ अंश अपनी डायरी में गोपनीय ढंग से लिखकर रखा था, जो साधकों के लिये अत्यन्त उपयोगी है। 'उद्बोधन' बँगला मासिक पत्रिका में यह मई-२०१२ से अनवरत प्रकाशित हो रहा है। पूज्य उपाध्यक्ष महाराज की अनुमति से इसका अनुवाद रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर के स्वामी प्रपत्त्यानन्द और वाराणसी के रामकुमार गौड़ ने किया है, जिसे 'विवेक-ज्योति' में क्रमशः प्रकाशित किया जा रहा है। – सं.)

११.०४.१९६४

प्रश्न : महाराज, आपने जब पहली बार माँ (सारदा) को देखा था, तब कैसा अनुभव हुआ था? आप वहाँ क्यों गए थे?

महाराज : अरे, मेरी बात छोड़ दो, मैं कुछ भी नहीं समझता था। उसके पहले ही तो ठाकुर की लीला-कथा पढ़ी थी। इन्ट्रैन्स पास कर लिया था, क्या करूँ? पूरे वंश में पाश्चात्य शिक्षा पानेवाला मैं पहला था। कोई कहता, दरोगा बन जाओ, कोई कहता कि पोस्ट ऑफिस में नौकरी कर लो। हमलोग पाश्चात्य संस्कृति के साथ बिल्कुल ही तालमेल नहीं कर सकते थे ! मैं तो पागल जैसा हो गया था। क्या करूँगा, इसका निश्चय न कर सकने पर हाथ में जो थोड़ा पैसा था, उसे लेकर १९०९ ई. में कोलकाता आ गया। मास्टर महाशय के बारे में जानता था। उस समय मैं बाउल कीर्तनियों के दल में था – गान गाते हुए आँखों से अश्रुपात होता, भाव से विह्वल हो जाता था। मैं एक परिचित मेस में गया था। उन लोगों के मुख से मेरे गाने की चर्चा सुनकर मास्टर महाशय मेरा गाना सुनने हेतु मेस में आ गए। मैं तब वहाँ नहीं था, बाद में यह सुनकर मुझे अच्छा नहीं लगा। मास्टर महाशय के सामने मैंने 'नाथ तुमि सर्वस्व आमार' भजन गाया था। भजन सुनकर मास्टर महाशय ने कहा था, 'ठाकुर के पश्चात् ऐसा भावपूर्ण दूसरा भजन नहीं सुना।'' उन्होंने मुझसे कहा था, ''आपको और कोई साधन-भजन करने की आवश्यकता नहीं होगी। भजन गाने से ही हो जाएगा।'' मास्टर महाशय को वहीं पहली बार मैंने देखा था – ठीक देवता जैसे थे ! उज्ज्वल गौरवर्ण चेहरा। कोलकाता का तो प्रत्येक व्यक्ति ही हमलोगों के लिए देवता तुल्य था – कैसी बातें ! कैसी भाषा ! इसके पहले मास्टर महाशय के साथ पत्राचार हुआ था। उन्होंने मुझे एक पत्र लिखा था – क्या लिखा था, अब याद नहीं है। पत्र के एक कोने में उन्होंने लिखा था – 'ठाकुर ने अपने संन्यासी शिष्यों को अग्निमंत्र से दीक्षित करके रखा है। मठ में आने पर उनका दर्शन मिलेगा।'' मेरे घर छोड़ने की बात पर वे बोले थे, ''एकदम से चले आना अच्छा नहीं। धैर्यपूर्वक सोच-समझकर करना चाहिए। जब माता-पिता देखेंगे कि मेरा बालक वहाँ सुख से रहता है, तब उन्हें अधिक कष्ट नहीं होगा।'' मुझे पत्र लिखकर उन्होंने महाराज से मिलने को कहा।

उद्बोधन में मैंने माँ का दर्शन किया था। माँ घूँघट निकालकर खड़ी थीं, मैंने झुककर चरणों में प्रणाम किया था। अब कुछ भी याद नहीं है। कोई बातचीत-परिचय आदि क्या होगा, उनके मुख की ओर देखने भर का भी साहस नहीं हुआ था।

मेरे दो साथियों ने कहा, ''रामकृष्ण की पत्नी, लगता है अन्तिम जन्म है।'' उस समय मैं मुक्ति आदि जानने पर भी विशेष कुछ नहीं समझता था। किन्तु तब यह समझ में आया था कि जब ये रामकृष्ण की पत्नी हैं, तो एक उच्चकोटि के महापुरुष के स्तर की ही कोई होंगी। मैं बाहर चला आ रहा था, तभी किसी ने बुलाकर प्रसाद दिया। कड़ा पाग का वह संदेश अभी भी याद है। उस अंचल में विशेषतः ब्राह्मणों के घरों में दुकान के संदेश का वैसा प्रचलन नहीं था। किन्तु मुझे तो वह अमृत जैसा लगा था। मैंने माँ का चित्र माँगा, तो बताया गया कि सबको हमेशा नहीं दिया जाता। तदुपरान्त माँ को चेचक हो गया, जिससे फिर दर्शन नहीं मिला।

इसके बाद बड़ा झमेला हुआ और बड़े भाई आकर मुझे अपने साथ घर ले गए। घर जाकर मैं अपना साधन-भजन लेकर चुपचाप पड़ा रहता। लोग कहने लगे कि लड़का पागल हो गया है। इसी बीच वचनामृत पढ़ता रहा। इतना स्मरण है कि वचनामृत का तृतीय भाग वी.पी.पी. द्वारा या अन्य किसी तरह मँगाया था। उसमें लिखित शोकातुरा ब्राह्मणी

का प्रसंग पढ़कर मन क्षुब्ध हो गया। ठाकुर का चित्र पानी में डाल दिया।

फिर एक बार वर्ष १९११ में कोलकाता आया। उस समय माँ के दर्शन हुए। उसके पूर्व सिलहट में रहकर मैंमन सिंह के एक स्कूल में अध्यापन किया था। वहीं पर लोगों ने कहा था कि यह मास्टर किसी काम का नहीं हैं। विद्यार्थियों को कुछ कहता-सुनता नहीं है, अर्थात् उन्हें कठोर अनुशासन में नहीं रख सकता।

तदुपरान्त एक नेशनल स्कूल में कुछ दिन अध्यापन किया, वह स्कूल बन्द हो गया। गाँव में एक छोटी पाठशाला थी, शायद एम.ई. स्कूल था, वहाँ मेरे एक मित्र थे, वहाँ भी कुछ दिन अध्यापन किया, किन्तु वहाँ कुछ मासिक नहीं मिलता था। याद आता है कि एक बार कुछ पैसा मिला था, तो उससे एक जोड़ा कपड़ा खरीदा था। इसके बाद वर्ष १९१४ में सत्संगानन्द जिस स्कूल में अध्यापन करते थे, (राजा का स्कूल अर्थात् वह राजा गिरीशचन्द्र नामक एक छोटे जमींदार का स्कूल था), वे कृषि विभाग में नौकरी पाकर चले गए। मोक्षदा बाबू के निर्देश पर मैं वहीं नौकरी पा गया। मैं उस स्कूल का छात्र भी रह चुका था, प्रधानाचार्य मेरे परिचित थे। वहीं पर कुसुमकामिनी गुप्त के साथ परिचय हुआ, उनके घर में ही मेरा पहला अड्डा हुआ।

इसके बाद वर्ष १९१३ में मैं माँ के पास जयरामबाटी गया। प्रात:काल स्टेशन पर ही एक व्यक्ति आग्रहपूर्वक मुझसे परिचय करके मुझे सादर अपने गाँव के घर (सम्भवत: वह जमींदार था और उसका घर जिवट में था) ले गया। तालाब से मछली पकड़कर खूब स्नेहपूर्वक मुझे भोजन कराया। फिर तीसरे पहर (शाम को) अपने ही नौकर के साथ जयरामबाटी पहुँचाया। मेरे साथ एक छोटी गठरी और आम की एक टोकरी थी। अरे, यह सब कुछ भी नहीं है। मेरे जीवन में तो कुछ भी विकास नहीं हुआ। अच्छी तरह स्मरण है, माँ दरवाजे पर पैर फैलाकर बैठी थीं – मैंने जाकर प्रणाम किया और दीक्षा की प्रार्थना की। इसी बीच माँ की बातें भी कुछ-कुछ प्रकाशित हुई हैं, तब उनके प्रति भगवती-बोध हुआ था। माँ ने कहा, ''बेटा, तुम्हारे तो गुरु गोसाईं हैं।'' मेरी दीक्षा हुई थी, यह बात मैंने माँ से नहीं बताई थी। तब मैंने घुटने टेककर हाथ जोड़कर कहा, ''माँ, क्या उससे शान्ति मिलती है?'' माँ ने हँसते हुए कहा, ''अच्छा बेटा, कल दीक्षा होगी।'' अगले दिन वाँडूज्जे तालाब में स्नान करके माँ के कक्ष में आया। वहाँ देखा कि माँ ने ही दो आसन बिछाकर रखा है। माँ पूरब मुख करके बैठीं और मैं दाहिनी और उत्तर मुख करके बैठा। माँ ने आचमन करने को कहा। उस समय मानो मैं कैसा हो गया था ! (मेरा एक अन्य भाव ही हो गया था।) आचमन करके जल कहाँ डालें, जमीन पर ही डाल दिया ! माँ ने दो मंत्र दिए – एक वैदिक मंत्र, उसकी जप-विधि मुझे मालूम ही थी, मैंने अच्छी तरह किया। दूसरा तांत्रिक शक्ति-मंत्र था। अच्छी तरह उसका भी जप किया था। तदुपरान्त माँ को प्रणाम करके एक वस्त्र और एक या दो रुपये देकर प्रणाम किया। दोपहर में प्रसाद पाया, पत्तल आदि उठाया था कि नहीं, याद नहीं है। किन्तु हाँ, दीक्षा के पश्चात् आसन वैसे ही पड़ा रहा !

मेरी आँखों के सामने दस दृश्य आते हैं। प्रथम – उद्बोधन में, कुछ भी याद नहीं है। द्वितीय – संध्या के समय जयरामबाटी पहुँचने पर देखा कि माँ पैर फैलाकर बैठी हैं। तृतीय – दीक्षा के समय देखा, माँ की तरकारी काटनेवाली उँगलियाँ। चतुर्थ – दोपहर में आसन लगाकर बैठी हैं। कामारपुकुर में जाकर अगले दिन सायंकाल लौटने पर देखा कि माँ पैर फैलाकर राधू दीदी और रासबिहारी महाराज के साथ बातें कर रही हैं। पंचम - अगले दिन प्रात:काल वापस आते समय माँ ने चरण नहीं छूने दिया। मैं प्रणाम करके चला आया। षष्ठ – मठ में पूजा के समय (१९१६ में) वर्तमान में साधु निवास के पास (लेगेट हाउस) में। खड़े रहकर प्रणाम करने के समय मुख की ओर देखा, दोनों नेत्र मानो टार्च हों ! सप्तम – १९१६ में पुराने ठाकुर मंदिर के सामने माँ लंगड़ाते हुए जा रही थीं। अष्टम – उद्बोधन के उत्तरी बरामदे में पैर फैलाये बैठी हुई थीं। मैंने कहा – ''माँ सिलहट बहुत दूर है, वहाँ बहुत से भक्त हैं, जो यहाँ नहीं आ सकते हैं।'' मैंने तीन बार घूम-फिरकर ऐसा कहा और माँ ने भी तीन बार 'ठाकुर हैं, ठाकुर हैं, ठाकुर हैं' कहा। मैंने सोचा, तब और क्या ! नवम – उद्बोधन के ठाकुर-मंदिर में बैठकर, बरामदे में पैर फैलाकर माँ सुपारी काट रही थीं। दशम – उद्बोधन के ठाकुर मन्दिर के दक्षिण ओर के बरामदे में माँ खड़ी थीं, मैंने उन्हें थोड़ी मिश्री दी थी, उसे उन्होंने जीभ से स्पर्श करा दिया। इसके अलावा, कितनी ही बार तो उन्हें देखा हूँ, किन्तु ये दस दृश्य मन में अंकित हैं ! उन्होंने मिश्री दी थी, किन्तु मुख ढँका था, इसीलिए मिश्री का स्वाद फिर नहीं पा सका। **(क्रमश:)**

प्रश्नोपनिषद् (१६)

श्रीशंकराचार्य

(सनातन वैदिक धर्म के ज्ञानकाण्ड को उपनिषद् कहते हैं। हजारों वर्ष पूर्व भारत में जीव-जगत् तथा उससे सम्बद्ध गम्भीर विषयों पर प्रश्न उठाकर उनकी जो मीमांसा की गयी थी, ये उन्हीं के संकलन हैं। वैदिक धर्म की पुनः स्थापना हेतु आचार्य ने इन पर सहज-सरस भाष्य लिखकर अपने सिद्धान्त को प्रतिपादित किया था। प्रश्नोपनिषद् पर लिखे उनके भाष्य का हिन्दी अनुवाद 'विवेक-ज्योति' के पूर्व-सम्पादक स्वामी विदेहात्मानन्द जी द्वारा किया गया है, जिसे 'विवेक-ज्योति' के पाठकों हेतु प्रस्तुत किया जा रहा है। –सं.)

किं च -

इसके अतिरिक्त –

प्रजापतिश्चरसि गर्भे त्वमेव प्रतिजायसे। तुभ्यं प्राण प्रजास्त्विमा बलिं हरन्ति यः प्राणैः प्रतितिष्ठति।।७।। (२३)

अन्वयार्थ – **त्वम्** तुम **एव** ही **प्रजापतिः** सभी प्राणियों के स्वामी (सन्) होकर **गर्भे** पितृगर्भ में **रेतस्** के रूप में और मातृगर्भ में सन्तान के रूप में **चरसि** विचरण करते हो (और) **प्रतिजायसे** जन्म लेते हो। **प्राण** हे प्राण, **त्वम्** तुम **यः** जो **प्राणैः** नेत्र आदि इन्द्रियों सहित **प्रतितिष्ठति** हर शरीर में स्थित हो, **इमाः** ये समस्त **प्रजाः** प्राणी **तु तुभ्यं** तुम्हारे लिये ही **बलिम्** भोग्य वस्तुएँ (नेत्रों आदि के द्वारा) **हरन्ति** लाते हैं।

भावार्थ – तुम्ही (सभी) प्राणियों के स्वामी होकर पितृगर्भ में रेतस् के रूप में और मातृगर्भ में सन्तान के रूप में विचरण करते हो (और उनके प्रतिरूप होकर) जन्म लेते हो। हे प्राण, तुम जो नेत्र आदि इन्द्रियों सहित हर शरीर में स्थित हो, ये समस्त प्राणी (नेत्रों आदि के द्वारा) तुम्हारे लिये ही भोग्य वस्तुएँ लाते हैं।

भाष्य – यः प्रजापतिः अपि स त्वम् एव गर्भे चरसि, पितुः मातुः च प्रतिरूपः सन् प्रतिजायसे; प्रजापतित्वात् एव प्राक् एव सिद्धं तव मातृ-पितृत्वम्। सर्व-देह-देहि-आकृतिच्छद्मनैकः प्राणः सर्वात्मा असि इत्यर्थः।

भाष्यार्थ – ये जो प्रजापति हैं, उनके रूप में भी तुम्हीं हो; पिता (के बीज) तथा माता (की सन्तति) के रूप में तुम्हीं गर्भ में विचरण करते हो और उनके प्रतिरूप होकर जन्म लेते हो। प्रजापति होने के कारण तुम्हारा 'माता-पिता होना' पहले से ही सिद्ध है। हे प्राण, सभी देहों तथा देहधारियों की आकृतियों के बहाने से सभी में तुम्हीं व्याप्त हो, अर्थात् तुम सर्वात्मा हो।

तुभ्यं त्वदर्थं या इमाः मनुष्य-आद्याः प्रजाः तु हे प्राण चक्षुः आदि-द्वारैः बलिं हरन्ति। यः त्वं प्राणैः चक्षुः आदिभिः सह प्रतितिष्ठति सर्व-शरीरेषु, अतः तुभ्यं बलिं हरन्ति इति युक्तम्। भोक्ता हि यतः त्वं तव एव अन्यत् सर्वं भोज्यम्।।

हे प्राण, ये जो मनुष्य आदि सारे प्राणी हैं, वे चक्षु आदि के द्वारा तुम्हारे लिये ही (दर्शन आदि रूपी) बलि (भेंट) लाते हैं। चूँकि तुम, प्राण अर्थात् नेत्र आदि के साथ सभी शरीरों में प्रतिष्ठित हो, अतः तुम्हीं को बलि चढ़ाते हैं, यह बात ठीक ही है। चूँकि तुम्हीं भोक्ता हो, अतः अन्य सब कुछ तुम्हारा ही भोज्य (भोजन) है।।७।। (२३)

किं च – इसके अतिरिक्त –

देवानामसि वह्नितमः पितृणां प्रथमा स्वधा। ऋषीणां चरितं सत्यमथर्वाङ्गिरसामसि।।८।। (२४)

अन्वयार्थ – **त्वम्** तुम **देवानाम्** इन्द्र आदि देवताओं के लिये **वह्नितमः** बलि के श्रेष्ठ वाहक (और) **पितृणाम्** पितरों के दिये जानेवाले **प्रथमा** प्रथम **स्वधा** स्वधा – भेंट के प्रापक हो। (तुम) **अथर्वा-अङ्गिरसाम्** अंगिरस-रूप अथर्वा नामक **ऋषीणाम्** नेत्र आदि प्राणों की (देहधारण-रूप) **सत्यम्** यथोचित **चरितम्** चेष्टा **असि** हो।

भावार्थ – (तुम इन्द्र आदि) देवताओं के लिये (बलि के) श्रेष्ठ वाहक (और) पितरों के दिये जानेवाले प्रथम स्वधा (भेंट) के प्रापक हो। (तुम) अंगिरस देह के सार-रूप अथर्वा नामक नेत्र आदि प्राणों की यथोचित चेष्टा हो।

भाष्य – देवानाम् इन्द्र-आदीनाम् असि भवसि त्वं बह्नितमः हविषां प्रापयितृतमः। पितृणां नान्दीमुखे श्राद्धे या पितृभ्यो दीयते स्वधा अन्नं सा देव-प्रधानम् अपेक्ष्य प्रथमा

शेष भाग पृष्ठ ४२५ पर

वरिष्ठ साधुओं की स्मृतियाँ (२)

स्वामी ब्रह्मेशानन्द

रामकृष्ण अद्वैत आश्रम, वाराणसी

(स्वामी ब्रह्मेशानन्द जी रामकृष्ण संघ के वरिष्ठ संन्यासी हैं। वे लुसाका और चण्डीगढ़ के अध्यक्ष और वेदान्त केसरी के सम्पादक थे। वे कई वरिष्ठ संन्यासियों के सान्निध्य में आये और उनकी मधुर स्मृतियों को लिपिबद्ध किया है। इसका हिन्दी अनुवाद श्री रामकुमार गौड़, वाराणसी ने किया है। – सं.)

स्वामी यतीश्वरानन्द जी की अन्य स्मृतियाँ

इन्दौर आश्रम के सदानन्द शुक्ल नामक एक भक्त थे, जो स्नेहलतागंज में स्थित पुराने आश्रम में प्राय: जाया करते थे। जब हम लोगों ने दीक्षा प्राप्त करके उन्हें इस बारे में बताया, तो उन्हें भी दीक्षा लेने की इच्छा हुई। उन्होंने हमें बताया कि वे दीक्षा हेतु बेंगलुरु जाने वाले हैं।

एक दिन वे अपने परिवार को या हमें बिना बताए ही अचानक गायब हो गये। उनके अनुज उनका पता लगाने आए। हम लोगों ने उन्हें बताया कि वे बेंगलुरु गये होंगे। वस्तुत: वे ट्रेन में बैठ गए थे। उन दिनों आजकल की तरह ट्रेनों की तीव्र गति नहीं थी। उन्हें बेंगलुरु पहुँचने में कम-से-कम २-३ दिन अवश्य ही लगे होंगे। इस बीच, हमलोगों ने बेंगलुरु आश्रम में टेलीग्राम भेजकर स्वामी यतीश्वरानन्द जी से अनुरोध किया कि उनके आश्रम में पहुँचने पर उनके रहने की व्यवस्था कर दी जाय (उस समय सेलफोन नहीं थे और ट्रंक-काल सुविधा भी सहज सुलभ नहीं थी)। सदानन्द शुक्ल बड़े ही अस्त–व्यस्त और भूख से पीड़ित होकर बेंगलुरु आश्रम पहुँचे। पहले तो स्वामी संज्ञानन्द जी (सोमनाथ महाराज) ने उन्हें स्नेहपूर्ण फटकार लगाई और फिर आश्रम के अतिथिगृह में वे ठहराए गए। इसी बीच, उनके भाई और दो छोटे बच्चों के साथ उनकी पत्नी उनके संसार–त्याग करके संन्यासी होने की आशंका से उन्हें ढूँढ़ते हुए बेंगलुरु आ गये। प्रथमत: सदानन्द को बताया गया कि दीक्षा ऐसी वस्तु नहीं है, जो केवल माँगने से मिलती है। किन्तु बाद में, स्वामी यतीश्वरानन्द जी ने उनको, उनकी पत्नी तथा उनके अनुज को दीक्षा दी।

बाद में जब मैं उनसे बेंगलुरु में मिला, तो मुझे यह सब ज्ञात हुआ। खूब हास–परिहास हुआ। किन्तु स्वामी यतीश्वरानन्द जी प्रसन्न थे और उन्होंने कहा, 'सदानन्द में भक्ति है।'

वे प्रणाम करनेवाले व्यक्ति की पीठ को स्नेहपूर्वक थपथपाकर आशीर्वाद दिया करते थे। एक बार मैंने उनसे ईश्वर–दर्शन पाने हेतु आशीर्वाद माँगा। तब उन्होंने कहा, ''आशीर्वाद है, आशीर्वाद है, इसका सदुपयोग करो।''

एम.बी.बी.एस. पास करने के तुरन्त बाद मैं रामकृष्ण मिशन में साधु बनना चाहता था। किन्तु उन्होंने जोर देकर कहा, ''नहीं, एम.डी. करो।'' जब एम.डी. परीक्षा उत्तीर्ण करने के बाद मैंने एक पत्र भेजकर सूचित किया, तो वे अतीव प्रसन्न हुए और सोमनाथ महाराज के माध्यम से आशीर्वाद भेजा।

एक बार ट्रेन से बेंगलुरु जाते समय, रेलवे की गड़बड़ी के कारण मैं लगभग एक दिन विलम्ब से पहुँचा। बाद में मुझे ज्ञात हुआ कि स्वामी यतीश्वरानन्द जी इससे बेचैन थे और माँ की तरह चिन्तित होकर बारम्बार पूछ रहे थे कि मुझे पहुँचने में इतनी देर क्यों हो रही थी।

मेरे पिताजी चिन्तित थे, क्योंकि मैं रामकृष्ण मिशन में साधु बनकर योगदान करने की योजना बना रहा था। वे प्राय: सरकारी दौरे पर बेंगलुरु जाया करते थे और इस सुयोग का लाभ उठाकर बेंगलुरु आश्रम भी जाते थे। एक ऐसे ही अवसर पर उन्होंने स्वामी यतीश्वरानन्द जी से कहा कि वे मुझे अपने पुत्र के रूप में खोना नहीं चाहते थे। स्वामी यतीश्वरानन्द जी ने उत्तर दिया, ''आप अपने पुत्र

को नहीं खोएँगे, अपितु वह एक बड़े परिवार का सदस्य बन जाएगा।''

स्वामी सत्स्वरूपानन्द जी ने इन्दौर में आश्रम प्रारम्भ किया था, किन्तु उनके प्रस्थान के बाद वह लगभग बन्द–सा हो गया। महेश, रवि, मैं और गजानन लेले इसे फिर से स्थापित करने का प्रयास कर रहे थे। हमलोगों ने वह हाल किराए पर लिया, जिसमें स्वामी सत्स्वरूपानन्द जी ने आश्रम प्रारम्भ किया था और फिर महेश, रवि और लेले ने वहाँ रहना शुरू किया। मैं भी आश्रम में रहना चाहता था, किन्तु मेरी माँ इसका प्रबल विरोध करती थीं। जब इस बारे में स्वामी यतीश्वरानन्द जी से पूछा गया, तो उन्होंने निर्देश दिया कि जब तक मेरी माँ हैं, तब तक मैं घर पर रहूँ और घर पर ही भोजन करूँ।

बेंगलुरु में एक बार स्वामी यतीश्वरानन्द जी अपनी दिनचर्या के अनुसार पूर्वान्ह ८-३०-९-०० बजे मंदिर में प्रणाम करने जा रहे थे। उनके साथ सोमनाथ महाराज और एक-दो अन्य लोग वहाँ थे। मैं भी उनके साथ चला गया। सोमनाथ महाराज ने धूप से बचाव हेतु स्वामी यतीश्वरानन्द जी के सिर के ऊपर रखने हेतु एक छाता मुझे दे दिया। चलते समय स्वामी यतीश्वरानन्द जी ने आकाश में कुछ देखकर, मुझे संकेत करके उसे देखने को कहा। आकाश में एक जेट विमान गोल चक्कर काटते हुए उड़ रहा था और उसके पीछे भाप की एक सफेद रेखा (पूँछ की तरह) का चक्र बन रहा था। वह एक सुन्दर दृश्य था।

एस.एन. कौल की स्मृतियाँ

इस प्रसंग में मुझे अपने गुरुभाई विंग कमाण्डर एस.एन. कौल की स्मृतियाँ याद आती हैं। वे और उनकी पत्नी, दोनों ही स्वामी यतीश्वरानन्द जी से दीक्षा प्राप्त थे। एस.एन. कौल चिड़चिड़े स्वभाव के थे और प्राय: क्रोध में अपनी पत्नी से झगड़ने लगते थे। इससे उनका पारिवारिक जीवन बहुत तनावपूर्ण था। एक दिन बड़े निराश होकर वे बेंगलुरु आश्रम में आए और स्वामी यतीश्वरानन्द जी से कुछ उपाय करने को कहा, जिससे वे अपने क्रोध को नियंत्रित कर सकें। क्योंकि इससे उनका पारिवारिक जीवन नष्ट हो रहा था। कुछ देर बाद दिनचर्यानुसार स्वामी यतीश्वरानन्द जी मन्दिर की ओर जाने लगे। कौलजी उनकी दाहिनी ओर चलते हुए उनके साथ–साथ जाने लगे। अचानक स्वामी यतीश्वरानन्द जी ने अपना दाहिना हाथ उनकी पीठ के ऊपरी भाग पर रखा। फिर सहसा उन्होंने अपनी एक उंगली के अग्रभाग से कौल की गर्दन के पिछले भाग के उस मध्यवर्ती स्थान को छू दिया, जो कपड़े से नहीं ढका था। एस.एन. कौल ने अनुभव किया कि उंगली के माध्यम से मानो एक शक्ति–प्रवाह उनके शरीर में प्रविष्ट हो रहा था और वे बेहोश होने लगे। ज्योंही वे गिरने ही वाले थे, त्योंही स्वामी यतीश्वरानन्द जी ने उंगली वहाँ से हटा ली और कौल फिर सहज-सामान्य हो गए। यह सब कुछ सेकंड में ही हो गया। उसी दिन से कौल का क्रोध क्रमश: कम होने लगा।

जब भी मैं हैदराबाद या बेंगलुरु में श्रद्धेय स्वामी यतीश्वरानन्द जी से मिलने जाता, तो परम्परानुसार कुछ उपहार ले जाता था। एक बार उन्होंने मुझसे कहा कि मैं उनसे मिलने आते समय कुछ उपहार न लाऊँ, क्योंकि मैं साधु होने वाला था। एक बार मैंने उन्हें भूरे रंग की एक ऊनी शॉल उपहार में दी। वह एक सर्वाधिक प्रचलित और उपलब्ध रंग वाली शॉल थी। उस उपहार को स्वीकार करते हुए उन्होंने कहा कि सही रंग का चयन महत्त्वपूर्ण होता है। उपहार सामग्री में से एक भक्त द्वारा प्रदत्त चमकीले रंग की शॉल को दिखाकर उन्होंने कहा कि उसे देने के लिए उन्हें केवल एक तमोगुणी भक्त को खोजना पड़ेगा।

श्रद्धेय महाराज प्रस्थान के समय हम लोगों को अपने आशीर्वाद के प्रतीक स्वरूप एक सफेद धोती प्रति–उपहार के रूप में दिया करते थे। मैं उनके आशीर्वाद स्वरूप प्राप्त अमूल्य उपहार को बड़े यत्नपूर्वक रखता था और ध्यान के समय उसका उपयोग करता था।

जैसे उन्होंने मुझसे एम.बी.बी.एस. से आगे की पढ़ाई जारी रखने को कहा था, वैसे ही मेरे दो और गुरु भाइयों को भी उच्चतर अध्ययन जारी रखने को कहा था। वे कभी भी हड़बड़ी में साधु जीवन अंगीकार करने के लिए प्रोत्साहित नहीं करते थे तथा इस बात को रेखांकित करते थे, ''कभी भी जल्दबाजी में निर्णय मत लो।''

बेंगलुरु जाने के पूर्व मैं स्वामी यतीश्वरानन्द को पत्र लिखकर उनकी अनुमति ले लिया करता था। एक बार मैं ग्रीष्मावकाश के समय वहाँ गया। मैं आश्रम द्वारा संचालित विद्यार्थी भवन (स्टूडेन्ट्स होम) के एक कमरे में रहा करता था, क्योंकि वह कमरा ग्रीष्मावकाश में खाली रहता था।

वापसी के समय मैंने दशहरा अवकाश के समय पुन: बेंगलुरु आने की इच्छा प्रकट की। स्वामी यतीश्वरानन्द जी ने सोमनाथ महाराज से पूछा कि क्या उस समय विद्यार्थी भवन खाली रहेगा। सोमनाथ महाराज ने 'हाँ' में उत्तर दिया। तब स्वामी यतीश्वरानन्द जी ने कहा, ''यदि कोई कमरा खाली न भी रहे, तो वह वृक्ष के नीचे रहेगा।'' उन्होंने लगभग यह भविष्यवाणी कर दी कि मैं संन्यासी बनूँगा।

तदुपरान्त मैं पुन: दशहरा अवकाश में बेंगलुरु गया। उसके बाद, वापसी के समय जब मैंने पुन: आने की इच्छा प्रकट की, तो उनका उत्तर सकारात्मक नहीं था। उन्होंने कहा कि सब कुछ भगवान की इच्छा पर निर्भर है और सचमुच उसके बाद मैं उनसे नहीं मिल पाया।

जीवन के अन्तिम काल में वे बेलूड़ मठ में थे। मैंने पत्र लिखकर उनसे मिलना चाहा था। उत्तर में उन्होंने पुन: मुझे हतोत्साहित किया और लिखा कि चिकित्सकों ने किसी को उनसे मिलने की अनुमति नहीं दी थी और यदि मैं बेलूड़ मठ जाऊँ, तो वे मुझसे बात नहीं कर सकेंगे और इससे वे बड़े दुखी होंगे। वे कितने सावधान थे !

एक बार मैंने उनसे पूछा कि स्थानान्तरण होने पर मुझे क्या करना चाहिए। (उस समय मैं सरकारी सेवा में था।) उन्होंने सुझाव दिया था कि मुझे रायपुर में नियुक्ति हेतु प्रयास करना चाहिए, क्योंकि वहाँ एक प्राइवेट आश्रम था, जो बाद में बेलूड़ मठ से संयुक्त हुआ। तदनुसार, मैंने अपना स्थानान्तरण रायपुर करवा लिया।

एक बार मैंने एक अंग्रेजी कविता लिखी और उन्हें दिखायी। उनकी टिप्पणी (जो अब मुझे याद नहीं है) प्रोत्साहनपरक नहीं थी, यद्यपि स्वामी सत्स्वरूपानन्द जी ने उसकी प्रशंसा की थी। वह मेरी अन्तिम कविता थी।

एक बार उन्होंने पूछा कि क्या मैं संस्कृत जानता था। मुझे संस्कृत का अधिक ज्ञान नहीं था। उन्होंने पूछा, ''क्या तुम सीख सकते हो?'' मैंने कहा कि मैं प्रयास करूँगा। उनकी इच्छा पूरी हुई। मैंने संस्कृत पर्याप्त ढंग से सीख ली और स्वयं शास्त्रों का अध्ययन करने में समर्थ होकर दूसरों को पढ़ा भी सकता था। **(क्रमशः)**

पृष्ठ ४१५ का शेष भाग

समान फैला – कई शताब्दियों पुराना निद्रित भारत उसकी सुदीर्घ अज्ञान निद्रा से जागा और नव-चैतन्य का प्रादुर्भाव हुआ। विशाल भारत एक बार फिर से नव चेतना के साथ जाग उठा। बाद में इस प्रबल प्रभावशाली व्याख्यान से भारत में स्वतन्त्रता संग्राम सहित अन्य कई आन्दोलनों में नई क्रान्ति का सूत्रपात हुआ और भारत की संस्कृति की रक्षा हुई !

गृहनगर कोलकाता में

देश के अन्य भागों की तरह उनके गृहनगर कोलकाता में समाचार पत्र जनसाधारण के लिए कम पड़ गए। ताजा समाचार के लिए लालायित लोगों की भीड़ समाचार पत्र कार्यालय में एकत्र होती और गलियों में जाकर आनन्द मनाती। कोलकाता में 'Indian Mirror' नामक समाचार पत्र धर्ममहासभा के सभी समाचारों को प्रमुखता से प्रकाशित करता था। इसके सम्पादक, श्री नरेन्द्रनाथ सेन, जो स्वामी विवेकानन्द के सहपाठी थे, ने वराहनगर मठ के लिए एक प्रशंसनीय प्रति भेजी। स्वामी शिवानन्द यह समाचार सुनकर प्रसन्न हुए और उन्होंने कहा कि यह एक बड़े ही सम्मान का विषय है। शीघ्रातिशीघ्र नरेन्द्रनाथ सेन अपने कार्यालय से आए, दौड़ते हुए अपने हाथों में समाचार पत्रों की कुछ शेष प्रतियाँ वितरित करते हुए वराहनगर मठ के लिए चल पड़े। सड़क से जोर देकर बोले, ''क्या तुम जानते हो, यह कौन है? यह और कोई नहीं हमारा अपना नरेन है ।'' इस प्रकार वराहनगर मठ में आनन्द की लहर फैल गई। वे आनन्द में विभोर हो उठे। बाद में स्वामी ब्रह्मानन्द ने विनोदपूर्वक कहा, ''पुराना भवन गिरने ही वाला था! सारा भवन 'रामकृष्ण की जय हो' के नारे से गूँज उठा!''

शिकागो धर्म महासभा में स्वामी विवेकानन्द ने अपने विचारों से ऐसे धर्म की व्याख्या की, जो किसी देश या काल तक सीमित न हो, जो सार्वभौमिक हो, जो इतना उदार हो कि निम्नतम से उच्चतम श्रेणियों तक के सभी प्राणियों को स्थान दे सके। एक ऐसा धर्म जिसमें असहिष्णुता और प्रताड़ना के लिए कोई भी जगह नहीं हो। जो धर्म अपने सम्पूर्ण बल और सामर्थ्य से मानवता को अपनी दिव्यता का साक्षात्कार कराने में सहायक हो। स्वामी विवेकानन्द ने विश्व धर्ममहासभा में जो धर्म समन्वय का व्याख्यान दिया, उसकी प्रभावशीलता आज भी जीवन्त है। ○○○

गीतातत्त्व-चिन्तन (३)

दशम अध्याय

स्वामी आत्मानन्द

(ब्रह्मलीन स्वामी आत्मानन्दजी महाराज रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर के संस्थापक सचिव थे। उनका 'गीतातत्त्व-चिन्तन' भाग-१ और २, अध्याय १ से ६वें तक पुस्तकाकार प्रकाशित हो चुका है और लोकप्रिय है। ८वाँ अध्याय 'विवेक ज्योति' के सितम्बर, २०१६ से नवम्बर, २०१७ अंक तक प्रकाशित हुआ था। अब प्रस्तुत है १०वाँ अध्याय, जिसका सम्पादन ब्रह्मलीन स्वामी निखिलात्मानन्द जी ने किया है – सं.)

तेषामेवानुकम्पार्थमहमज्ञानजं तमः।
नाशयाम्यात्मभावस्थो ज्ञानदीपेन भास्वता।।११।।

तेषाम् (उनपर) अनुकम्पार्थम् (अनुग्रह करने हेतु) अहम् (मैं) एव (ही उनके) आत्मभावस्थ: (अन्त:करण के) अज्ञानजम् (अज्ञानजनित) तम: (अन्धकार को) ज्ञानदीपेन (ज्ञानरूपी) भास्वता (तेज से) नाशयामि (नष्ट कर देता हूँ)।

''उन पर अनुग्रह करने हेतु मैं उनके अन्त:करण के अज्ञान अन्धकार को ज्ञान तेज से नष्ट कर देता हूँ।''

अर्जुन ! – **तेषाम् एव अनुकम्पार्थम्** – ऐसे साधकों पर, ऐसे भक्तों पर अनुकम्पा करने के लिए ही, दया करने के लिए ही, **अहम् अज्ञानजं तमः नाशयामि** – मैं अज्ञान से उत्पन्न अन्धकार को नष्ट कर देता हूँ। यह मैं उन भक्तों पर कृपा करने के निमित्त ही करता हूँ। वह किस प्रकार? **आत्मभावस्थो ज्ञानदीपेन भास्वता** – मैं उनके आत्मभाव में, अन्त:करण में, ज्ञानदीप को प्रज्वलित करके, उनके अन्धकार को नष्ट कर देता हूँ। भक्ति और ज्ञान का अपूर्व समन्वय इस ११वें श्लोक में दिखाई देता है। यहाँ पर भक्ति के साथ-साथ ज्ञान भी दिखाई देता है। भगवान क्या कहते हैं? जो भक्ति के रास्ते से जा रहा है, जो अपना मन मुझमें लगाने की कोशिश कर रहा है, उसके लिए मैं बुद्धियोग दे देता हूँ। बुद्धियोग देता हूँ, इसका क्या तात्पर्य है? मैं ऐसे भक्तों के भीतर में ज्ञानदीप प्रज्वलित कर देता हूँ।

ज्ञान और भक्ति एक-दूसरे के पूरक

जब ज्ञानदीप प्रज्वलित हो जाता है, तो वह अज्ञान से उत्पन्न अन्धकार को विनष्ट कर देता है। यह उन पर कृपा करने के लिए मैं करता हूँ। यह भगवान का वचन है। हमारे जीवन के अन्धकार को दूर करने के लिए भगवान स्वयं ऐसी व्यवस्था कर देते हैं। मानो दोनों बातें हैं। हम भक्ति के रास्ते से चलें, भगवान अपने स्वरूप का ज्ञान हमें दे देते हैं।

जाने बिनु न होइ परतीती।
बिनु परतीति होइ नही प्रीती।।
प्रीति बिना नही भगति दृढ़ाई।

– मानो ज्ञान के लिए भक्ति अपेक्षित है और भक्ति के लिए ज्ञान अपेक्षित है। ये दोनों अलग-अलग नहीं जा सकते। दोनों एक-दूसरे के पूरक हैं। शास्त्रग्रन्थों का यह जो भाव है, यही भाव भगवान यहाँ पर व्यक्त करते हैं। मानो दोनों समन्वित होकर जीवन में उतरते हैं। शंकराचार्य यहाँ पर बड़ा ही सुन्दर भाष्य करते हैं – दीप क्या है और किस प्रकार इस दीप को जलाना चाहिए। वे कहते हैं – **भक्तिप्रसादस्नेहअभिषिक्तेन** – दीप में तो घी रहता है। यह घी क्या है? वे कहते हैं कि यह घी भक्ति का प्रसाद है। हम भक्ति का घी बनाते हैं। दीया किसका बनाते हैं? और कैसे यह दीप जल रहा है? कहते हैं – **मद् भावनाभिनिवेशवातेरितेन** – यह जो मेरी भावना है, भक्त मेरा जो चिन्तन करता है। हर समय अपने मन को मेरी लीला में, मेरी विभूति में, मेरे योग में लगा कर रखता है। यह मानो वायु है। इस वायु के कारण यह दीप जल रहा है। मेरी भावना रूपी वायु के सहारे उस दीप को प्रज्वलित

करना और भक्तिरूपी घी से उस दीप को भरकर रखना। उसमें जो बत्ती जलती है, वह बत्ती किसकी है? वह है - **ब्रह्मचर्यादिसाधनसंस्कारवत्प्रज्ञावर्तिना** – प्रज्ञा – बुद्धि की बत्ती है। यह बुद्धि कैसी होनी चाहिए? ब्रह्मचर्य आदि जो संस्कार हैं, उन संस्कारों द्वारा शोधित जो बुद्धि है, प्रज्ञा है, वही इसमें की बाती है। बाती तो हो गई, पर आधार क्या है, दीप क्या है? **विरक्तअन्तःकरणआधारेण** – जो हृदय विरागी है, जिस हृदय में संसार की वासना धीरे-धीरे कम हो रही है। जो हृदय संसार की वासना से हट रहा है। ऐसा जो विरागी हृदय या अन्तःकरण विरागी है, वही मानो दीप है। इसमें भक्ति का घी है। बाती काहे की है? बुद्धि की बाती है। बुद्धि कैसी है? जो ब्रह्मचर्य आदि भिन्न-भिन्न प्रकार के संस्कारों द्वारा शोधित है और उसका ढक्कन क्या है? जोर से हवा चले तो वह दीप बुझ जाए। परन्तु हम दीप को प्रज्वलित बनाए रखने के लिए एक काँच का या किसी प्रकार का ढक्कन उस पर रख देते हैं, जिससे हवा से उसकी रक्षा हो। दीप की लौ की रक्षा के लिए यह ढक्कन होता है। वह ढक्कन क्या है? **विषयव्यावृत्तचित्तरागद्वेषअकलुषित-निवात-अपवारकस्थेन** – यह अपवारक है, मानो ढक्कन है। ढक्कन किसका है? राग-द्वेष के कालुष्य से रहित जो चित्त है, वही मानो उसमें ढकने का काम करता है। इसके बाद कहते हैं कि उसमें से जो प्रकाश निकलता है, वह किसका प्रकाश है? **नित्यप्रवत्तैकाग्र्यध्यानजनितसंम्यग्दर्शनभास्वता** – नित्य इस प्रकार के ध्यान करने के फलस्वरूप जो उसमें से ज्ञान निकलता है, वही ज्ञान मानो बाती का प्रकाश है। इस प्रकार की उपमा उन्होंने दी। पर इस उपमा में इतनी दूर जाने की भी आवश्यकता नहीं।

बुद्धियोग का तात्पर्य

इसका साधारण तात्पर्य यह है कि जब हम भगवान की ओर जाने की कोशिश करते हैं, तो भगवान भी दस कदम बढ़कर हमारी ओर चले आते हैं। वे भी हमारा हाथ पकड़कर खींचने का प्रयास करते हैं। जब भगवान देखते हैं कि हम सचमुच आगे बढ़ने का प्रयास कर रहे हैं, तो वे बुद्धियोग दे देते हैं। बुद्धियोग का क्या मतलब है? तब कहते हैं कि ज्ञानदीप उसके अन्तःकरण में मैं जला देता हूँ, जिससे अज्ञान का अन्धकार तत्काल मिट जाता है। यह उन भक्तों पर कृपा करने के लिए मैं करता हूँ। यह भगवान ने हमें आश्वासन दिया या वचन दिया, जैसा भी कह लें। अब अर्जुन कहता है, भगवन्, आपने विभूति के सम्बन्ध में बताया, योग के सम्बन्ध में बताया। पर जब चिन्तन करने जाएँ और आपकी विभूति को या योग को देखने की कोशिश करें, यह संसार तो अनन्त है और हम देखने का प्रयास करें, तो कैसे करें? वह भावना भी हम करें, तो किस प्रकार से करें? आप हमें कुछ प्रत्यक्ष रूप से निर्देश दीजिये। ऐसा अर्जुन का तात्पर्य है। तो अर्जुन प्रश्न पूछते हैं। क्या पूछते हैं?

अर्जुन उवाच

परं ब्रह्म परं धाम पवित्रं परमं भवान्।
पुरुषं शाश्वतं दिव्यमादिदेवमजं विभुम्।।१२।।
आहुस्त्वामृषयः सर्वे देवर्षिर्नारदस्तथा।
असितो देवलो व्यासः स्वयं चैव ब्रवीषि मे।।१३।।

अर्जुन उवाच (अर्जुन बोला) भवान् (आप) परम् ब्रह्म (परम ब्रह्म) परम् धाम (परम धाम) परमम् पवित्रम् (परम पवित्र हैं) त्वाम् (आपको) सर्वे ऋषयः (सब ऋषिगण) शाश्वतम् दिव्यम् पुरुषम् (सनातन दिव्य पुरुष) आदिदेवम् अजम् विभुम् (आदिदेव अजन्मा और सर्वव्यापी) आहुः (कहते हैं) तथा (वैसे ही) देवर्षि नारदः (देवर्षि नारद) असितः देवलः व्यासः (असित देवल और व्यास) च स्वयम् एव (और स्वयं आप भी) मे (मुझसे) ब्रवीषि (यही कहते हैं)।

''आप परम ब्रह्म, परम धाम, परम पवित्र हैं। आपको सब ऋषिगण सनातन दिव्य पुरुष, आदिदेव, अजन्मा और सर्वव्यापी कहते हैं।''

''वैसे ही देवर्षि नारद, असित और देवल ऋषि, महर्षि व्यास और आप स्वयं भी मुझसे यही कहते हैं।''

प्रभु हमने मान लिया कि आप साक्षात् परं ब्रह्म हैं, परम धाम हैं। आप ही एकमात्र गन्तव्य हैं। आपके समान पावन और कुछ नहीं है। आपसे बढ़कर पवित्रता देनेवाला कोई तत्त्व नहीं, कोई उपाय नहीं है। **पुरुषं शाश्वतं दिव्यम्** - आप शाश्वत और दिव्य पुरुष हैं। आप ही आदिदेवता हैं। समस्त देवताओं के भी पहले आप ही हैं। अजम् – आप अजन्मा हैं और विभुम् – आप व्यापक या सर्वव्यापी हैं।

जितने भी ऋषि हो गये हैं, वे भी आपके इसी स्वरूप की बात कहते हैं और देवर्षि नारद भी ऐसा ही कहते हैं। इसका मतलब यह कि उस समय भी देवर्षि नारद का कितना प्रभाव था ! मानो उनकी बात प्रमाणस्वरूप ली जाती थी। यहाँ अर्जुन भी इसी बात का उल्लेख कर रहे हैं। कितने ही

ऋषि हैं, जैसे असित ऋषि, देवल ऋषि, व्यास ऋषि, ये सब बड़े-बड़े ऋषि भी आपके सम्बन्ध में यही बात करते हैं। इन सबकी तो बात ही क्या ! स्वयं आप भी तो अपने बारे में यही बात कहते हैं। अर्जुन यह बात प्रभु से कहते हैं।

सर्वमेतदृतं मन्ये यन्मां वदसि केशव।
न हि ते भगवन् व्यक्तिं विदुर्देवा न दानवाः।।१४।।

केशव (हे केशव !) यत् माम् वदसि (जो भी मुझसे कहते हैं) एतत् सर्वम् ऋतम् मन्ये (इस सबको मैं सत्य मानता हूँ) भगवन् (भगवन्!) ते व्यक्तिम् (आपके स्वरूप को) न दानवाः विदुः (न तो दानव जानते हैं) न देवाः हि (न तो देवता ही)।

''हे केशव ! आप जो भी मुझसे कहते हैं, इन सबको मैं सत्य मानता हूँ, भगवन् ! आपके स्वरूप को न तो दानव जानते हैं न तो देवता ही।''

सर्वमेतदृतं मन्ये – ये सब कुछ मैं सत्य मानता हूँ, भगवन् ! ऐसा नहीं कहता कि आप अपने सम्बन्ध में बढ़ा-बढ़ाकर कह रहे हैं, ऐसा मैं अभियोग नहीं लगाता। आप जो कहते हैं, वह सत्य है। नारद ने जो कहा, सत्य है। ऋषियों ने आपके सम्बन्ध में जो भी कहा, वह भी सत्य है। भगवन्, आपका जो व्यक्तित्व है, आपका जो आविर्भाव है, आपकी जो उत्पत्ति है, उसको न दानव जानते हैं, न देवता ही जानते हैं। उसका कारण भगवान ने स्वयं कहा था। मैं ही देवताओं को उत्पन्न करता हूँ।

देवता आध्यात्मिक और दानव भौतिकवादी

तो जो देवताओं से पहले विद्यमान हैं, उसे देवता भला कैसे जाने! इसीलिए अर्जुन कहता है कि यह भी मैंने मान लिया कि आपकी उत्पत्ति को देवता नहीं जानते, तो फिर दानवों की तो बिसात ही क्या है? दानव का तात्पर्य प्रजापति की दोनों सन्तानों से है। एक को हमने देवता के नाम से पुकारा। पौराणिक कहानियों में आता है कि प्रजापति की दो सन्तानें थीं, एक का नाम था इन्द्र और दूसरे का नाम था विरोचन। इन्द्र के अनुयायी देवता कहलाए और विरोचन के अनुयायी दानव कहलाए। इन्द्र उच्चतर तत्त्वों में विश्वास करनेवाले थे। ऐसा विश्वास करनेवाले कि यह शरीर ही सब कुछ नहीं है, यह मन ही सब कुछ नहीं है, बल्कि शरीर और मन के भीतर में एक आत्मतत्त्व है, जो परिवर्तनशील नहीं है। शरीर में परिवर्तन होता है, मन में परिवर्तन होता है, पर भीतर का आत्मतत्त्व अपरिवर्तनशील है। यह जो जाग्रत है, जो स्वप्न हम देखा करते हैं और जो सुषुप्ति की अवस्था है, इन तीनों अवस्थाओं से परे एक ऐसी चौथी अवस्था है, जो वस्तुतः मनुष्य का सच्चा स्वरूप है। ऐसा विचार करके इन्द्र ने ज्ञान प्राप्त किया और वह कथा बड़ी लम्बी चलती है, जो हमें उपनिषदों में प्राप्त होती है। विरोचन इस शरीर को ही सब कुछ समझनेवाला था। यही आत्मा है और यही सब कुछ है, ऐसा जो माननेवाला था और उसने अपने अनुयायियों को यही पाठ पढ़ाया कि शरीर ही सब कुछ है। ये लोग दानव कहलाते हैं। तो जो भौतिकतावादी हैं, वे तो दानव हैं और जो आध्यात्मिकतावादी हैं, उनको देवता के नाम से पुकारा गया। पर थे दोनों ही प्रजापति के पुत्र ही। इसीलिए अर्जुन कहते हैं कि जब देवता भी आपकी उत्पत्ति के सम्बन्ध में नहीं जानते, तो भला दानव क्या जानेंगे? जो आध्यात्मिक अवस्था में रहते हैं, वे भी जब नहीं जान पाते, तो भगवन्, जो भौतिक अवस्था में हरदम विचरण करते हैं, शरीर पर ही जिनकी दृष्टि है, वे भला आपको क्या समझेंगे?

ईश्वर यदि कृपापूर्वक स्वयं को प्रकट न कर दें, तो व्यक्ति उन्हें जान नहीं सकता

स्वयमेवात्मनात्मानं वेत्थ त्वं पुरुषोत्तम।
भूतभावन भूतेश देवदेव जगत्पते।।१५।।

भूतभावन (हे भूतों के उत्पादक !) भूतेश (हे भूतों के स्वामी !) देवदेव (हे देवों के देव !) जगत्पते (हे जगत्पति!) पुरुषोत्तम (हे पुरुषश्रेष्ठ !) त्वम् स्वयम् एव (आप स्वयं ही) आत्मना (अपने से) आत्मानम् (अपने आप को) वेत्थ (जानते हैं)।

''हे भूतभावन ! हे भूतेश ! हे देवदेव ! हे जगत्पते! हे पुरुषोत्तम! आप स्वयं ही अपने आप को जानते हैं।''

कहते हैं, हे पुरुषोत्तम! हे भूतभावन! समस्त भूतों को उत्पन्न करनेवाले, हे भूतेश! समस्त भूतों के राजा, हे देवदेव! हे जगत्पते! आप स्वयं को अपने-आप से ही जानते हैं। आपको कोई जान नहीं सकता। जैसा वाल्मीकि ने भगवान राम के सम्बन्ध में कहा था। जब भगवान राम ने वनवास जाते समय पूछा था कि कहाँ मैं रहूँ, तो वे उत्तर देते हुए कहते हैं कि आपको भला कौन जान सकता है? आपको कौन स्थान बताए? **सोइ जानइ जेहि देउ जनाई** – आपको

केवल वही जान सकता है, जिसको आप कृपा करके जना देते हैं। तो यही बात यहाँ पर अर्जुन कह रहे हैं कि भगवन्, आपको कोई दूसरा नहीं जानता, आपको आप स्वयं ही जानते हैं। श्रीरामकृष्ण देव अपनी साधारण, सरल, सहज और आकर्षक भाषा में कहते हैं – जैसे एक पुलिस का सिपाही है और रात में वह गश्त लगा रहा है, उसके हाथ में चोर-लालटेन है। जो दूसरा व्यक्ति होगा, वह पुलिस को देख नहीं सकता। चोर-लालटेन ऐसी रहती है कि उसका प्रकाश सामने जाता है, पीछे नहीं जाता और सामने की ओर वह दूसरों का चेहरा देख सकता है। जैसे अब उसका परिचित कोई मिला, यह पुलिस तो उस परिचित व्यक्ति को देख सकता है, परन्तु सामनेवाला व्यक्ति नहीं देख पाता। वह कहता है, भैया, तुम जरा यह लालटेन अपनी तरफ घुमाओ, तो देखूँ कि तुम्हीं मेरे दोस्त हो या नहीं हो। यदि वह पुलिसवाला कृपा करके अपनी लालटेन को घुमा ले, तो वह दूसरा व्यक्ति देख पाएगा। उसी तरह कहते हैं कि भगवान उसी प्रकार माया के परदे को हटाकर अपनी तरफ प्रकाश डालते हैं, तभी भक्त उन्हें देख पाता है। अन्यथा भक्त को देखने की क्या क्षमता है? वही यहाँ पर, अर्जुन प्रभु से कह रहा है कि आप स्वयं अपने को जानते हैं। दूसरे किसी की क्या बिसात है, जो आपको जान सके? **(क्रमशः)**

पृष्ठ ४०८ का शेष भाग

पतति पत्रशाखा तु नारिकेलतरोर्यथा ।
लाञ्छनं पत्रमूले स्यात् पत्रपातादनन्तरम् ।।१५।।

अन्वय : श्रीरामकृष्णः उवाच (श्रीरामकृष्ण ने कहा) यावत् (जब तक) देह-धारणम् (शरीर धारण अर्थात् शरीर जब तक रहे) तावत् (तब तक) मम-अहंत्वम् (मेरा-मैं भाव) एकान्ततः (एकदम) अपगच्छति न (जाता नहीं) अस्य (इसका अर्थात् ममत्व का) किञ्चित्-अपि (कुछ न कुछ) विद्यते हि (शेष रह ही जाता है) यथा (जैसा) नारिकेल-तरोः (नारियल के पेड़ से) पत्र-शाखा (नारियल के पत्ते) पतति (गिर जाते हैं) तु (परन्तु) पत्रमूले (पत्ते के मूल में) पत्र-पातात्-अनन्तरम् (पत्ते गिर जाने के बाद) [तस्य] लाञ्छनम् (उसका दाग या निशान) स्यात् (रह जाता है) तु (परन्तु) तत् (वह) लवम् (तुच्छ) अहम् (मैं) मुक्तम् (मुक्त) पुरुषम् (पुरुष को) बंधुम् (आबद्ध) अर्हति न (नहीं कर सकता) १४-१५)

अनुवाद : श्रीरामकृष्ण बोले – जब तक शरीर रहे, तब तक 'मेरा', 'मैं' एकदम से जाता नहीं है, बल्कि ममत्व का कुछ-न-कुछ शेष रह ही जाता है। जैसे नारियल पेड़ से नारियल के पत्ते गिर जाते हैं, परन्तु पत्ते के मूल में पत्ते गिर जाने के बाद उसका दाग या निशान शेष रह जाता है। परन्तु वह तुच्छ 'मैं' मुक्त पुरुष को आबद्ध नहीं कर सकता ।।१४-१५।। **(क्रमशः)**

पृष्ठ ४१८ का शेष भाग

भवति। तस्या अपि पितृभ्यः प्रापयिता त्वमेव इत्यर्थः।

भाष्यार्थ – (हे प्राण !) इन्द्र आदि देवताओं को हविष् (आहुति) प्राप्त करानेवालों में तुम्हीं सर्वश्रेष्ठ अग्नि हो। देवताओं के पहले, पितरों के लिये किये जानेवाले नान्दीमुख नामक श्राद्ध – जिसमें पितरों को 'स्वधा' कहकर जो अन्न दिया जाता है – उसे भी पितरों को प्राप्त करानेवाले तुम्हीं हो।

किं च ऋषीणां चक्षुः आदीनां प्राणानाम् अङ्गिरसाम् अङ्गिरस-भूतानाम् अथर्वणां तेषाम् एव 'प्राणो वा अथर्वा' इति श्रुतेः चरितं चेष्टितं सत्यम् अवितथं देह-धारण-आदि-उपकार-लक्षणं त्वमेव असि।।

इसके अतिरिक्त, चक्षु आदि अंग (इन्द्रियों), जो प्राणियों के सार हैं; देह के रक्षण आदि उपकार के रूप में, तुम्हीं उनके सत्य वास्तविक आचरण हो । इसी (प्राण) को श्रुति में अथर्वस् कहा गया है – 'प्राण ही वस्तुतः अथर्वा है।'' ।।८।। (२४) **(क्रमशः)**

वर्तमान में जिओ, कुसंग से बचो और भगवान का भजन करो

स्वामी सत्यरूपानन्द

सचिव, रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर

हमें कर्म बड़ी सावधानी से करना चाहिए। यदि हमारे कर्म में स्वार्थ आ जाए, तो उसमें दोष है। कर्म करते समय नाम-यश की इच्छा नहीं रखनी चाहिए। भगवान से प्रार्थना करो और फल की आशा मत करो। हमें कुसंग से बचना है। कुसंग से राग, द्वेष, अंहकार आता है। भक्त को इनसे बचना चाहिए। स्वेच्छानुसार चलने से कुछ नहीं होगा, गुरु की बात मानकर चलो। भगवान से बोलना – या तो परिस्थिति बदल दो, नहीं तो मुझे सहने की शक्ति दो। मनुष्य को अपने कर्मफल को स्वयं ही भुगतना है, इसलिये उसे भगवान से सहने की शक्ति माँगनी चाहिये। सब कुछ भगवान की ईच्छा से ही होता है। इसे स्वीकार करना है। स्वीकार नहीं करोगे, तो कष्ट पाओगे। अपनी सभी बातें भगवान को बताओ। अस्वस्थ हो, तब भी और स्वस्थ हो, तब भी भगवान को बताओ। अपनी गोपनीय से गोपनीय बात भी ठाकुर को कहो। एक बात को सदा याद रखो – भगवान हैं, वर्तमान में हैं। अपने मन को भगवान से जोड़ो। उसके बाद मन में यह भावन रखो, भगवान जैसे रखेंगे, वैसे रहूँगा – **'जाही विधि राखे राम, ताहि विधि रहिए।'** कोई भी परिस्थिति सदा नहीं रहती है, बदलती रहती है, अच्छे दिन आते हैं। 'ये भी नहीं रहेगा' इस आशा-मन्त्र को याद रखो। कैसी भी परिस्थिति क्यों न हो, भगवान का नाम मत भूलो – **बिसारो न हरि नाम।**

यदि मन में संग्रह की वृत्ति है, तो वहाँ विवेक से काम करना चाहिए। हमारे आवश्यकताओं की पूर्ति हो रही है, तो हम क्यों संग्रह करें। जब भी मन विचलित हो, तो अपने आपको पूछो कि तू क्या चाहता है? भगवान को या संसार को? तुम जगत में क्यों आये हो और क्या चाहते हो, ये सोचना है। यदि भगवान चाहिये, तो अनावश्यक संसार की आसक्ति छोड़ो। जीवन में उपयोगितावादी दृष्टि रखो। अनावश्यक वस्तुओं को अपने पास मत रखो। भगवान की इच्छा से जो मिला है, उसमें सन्तुष्ट रहो। तब तुम्हारा चित्त शान्त रहेगा। शान्त-चित्त में भगवान का प्रकाश दीखेगा। भगवान तुम्हारे हृदय में ही हैं।

समय का सदुपयोग करो। हम-सबके पास २४ घंटे हैं, तो अपने जीवन की उन्नति के लिए हमें कैसा उपयोग करना है, ये हमें ही सोचना है। अगर हम शान्ति चाहते हैं, तो शान्तिमय भगवान से जुड़ें। अच्छा आदमी बनने की कोशिश करें। अपने मन पर दृष्टि रखें। भगवान का भजन और संसार का काम करते-करते जीवन यापन करें। जैसा अपने गुरु ने बताया है, वैसी साधना करते रहें। यदि हम ऐसा सोच सके कि जो मिला है, उसमें ही संतुष्ट रहना है, तब तुम आनन्द में रहोगे। वर्तमान में जीने की कोशिश करो। संसारी लोगों के संग से बचो।

जीवन में ऐसा आचरण करो कि संसार में दूसरी बार न आना पड़े और इसी जीवन में शान्ति मिले। हमारे मन में संसार का आकर्षण नहीं होना चाहिए। क्योंकि सांसारिक आकर्षण से कभी शान्ति नहीं मिल सकती। आकर्षण तो भगवान की ओर ही होना चाहिए। हम संसार चाहते हैं और संसार हमारे अनुकूल होना चाहिए, ऐसा सोचते हैं पर ऐसा होता नहीं। हमने पिछले जन्म में जो अच्छे-बुरे कर्म किये हैं, वह इस जन्म में भुगत रहे हैं। यदि उसकी पीड़ा से मुक्ति चाहते हैं, तो अपने अन्त:करण से भगवान से प्रार्थना करो। प्रार्थना में बहुत शक्ति है। हमारी मानसिक दुर्बलताओं को दूर करने का एक ही उपाय है और वह है भगवान से प्रार्थना। ○○○

साधुओं के पावन प्रसंग (३३)

स्वामी हरिप्रेमानन्द और स्वामी महेश्वरानन्द

स्वामी चेतनानन्द

(स्वामी चेतनानन्द जी महाराज से रामकृष्ण संघ के भक्त भलीभाँति परिचित हैं। वर्तमान में महाराज वेदान्त सोसायटी, सेंट लुइस के मिनिस्टर-इन-चार्ज हैं। उन्होंने श्रीरामकृष्ण, श्रीमाँ सारदा, स्वामी विवेकानन्द और वेदान्त पर अनेक पुस्तकें लिखी और अनुवाद की हैं। प्रस्तुत पुस्तक में रामकृष्ण संघ के महान त्यागी संन्यासियों के संस्मरण हैं, जिनके सम्पर्क में लेखक स्वयं आए थे। 'विवेक ज्योति' के पाठकों हेतु मूल बंगला से इसका हिन्दी अनुवाद धारावाहिक रूप से दिया जा रहा है। – सं.)

श्रीमाँ के शिष्य **स्वामी हरिप्रेमानन्द जी महाराज** (१८९५-१९७१) को उद्बोधन में आते-जाते देखा करता था। उनकी दो बड़ी-बड़ी लाल आँखें थीं। उनको उच्च रक्तचाप था। इन वृद्ध साधु को देखने से ऐसा लगता, जैसे श्रीमाँ के बालक-भक्त हों। उद्बोधन में उन दिनों कमरा का अभाव था। उद्बोधन में सदर द्वार से प्रवेश करने पर दाँयें घर के मेज पर प्रसाद पाया जाता था और इसके साथ ही रात्रि में अतिथि साधुओं को छोड़कर अन्य लोग बिना मसहरी के चटाई बिछाकर सोया करते थे।

तदुपरान्त १९५९ ई. में उनके साथ वाराणसी में भेंट हुई। मैं उस समय अद्वैत आश्रम, कोलकाता में रहता था। वाराणसी में मैं दूर्गापूजा के समय तीन-चार दिन था। अपूर्वानन्दजी महन्त थे। जाते-जाते ही हरिप्रेम महाराज ने मुझसे कहा, ''देखो, तुम जहाँ भी जाना, वहाँ पर दो बातें पहले जान लेना – बाथरूम कहाँ है और पीने का पानी का स्थान कहाँ है। शरीर यदि अस्वस्थ हो, तो तुम जप-ध्यान नहीं कर पाओगे। इसीलिए बाथरूम कहाँ पर है, यह जानना आवश्यक है। उसी प्रकार प्यास मिटाने के लिए जल की मटकी किस स्थान पर रखा गया है, जान लेना।'' इन वृद्ध संन्यासी का व्यावहारिक ज्ञान देखकर मुग्ध हो गया।

वाराणसी में हरिप्रेम महाराज मेरे मार्गदर्शक थे। वे पहले दिन मुझे विश्वनाथ-दर्शन कराने के लिए ले गये। वृद्धावस्था के कारण वे थोड़ा-सा लँगड़ाकर चलते थे। विश्वनाथ मन्दिर के गलीवाले सभी लोग उनको जानते थे। एक फूल की दुकान पर जूता रखकर महाराज के साथ भीड़ के बीच से ही विश्वनाथ मन्दिर में प्रवेश किया। वे खड़े रहकर मुझे सहायता करने लगे, जिससे मैं बाबा विश्वनाथ के सिर पर अच्छी तरह से फूल, बेलपत्ता और गंगाजल देने का समय पाऊँ। तदुपरान्त भक्तों की भीड़ के कारण हमें बाहर आ जाना पड़ा। उन्होंने मेरा हाथ पकड़कर मन्दिर की दाँयीं ओर के सफेद पत्थर पर बैठाया और कहा, ''देखो, तुमने कम समय के लिए बाबा विश्वनाथ का जो दर्शन किया, अभी नेत्र बन्द करके ध्यान करो।'' मैं उनके उपदेशानुसार बाबा विश्वनाथ का चिन्तन करने लगा और वे नेत्र बन्द करके अपने चादर के भीतर हाथ रखकर जप करने लगे। १५-२० मिनट के बाद उन्होंने मुझे कहा, ''देखो, तुम यदि किसी मन्दिर में देव-देवी का दर्शन करने जाते हो, तो केवल दर्शन करके चले मत आना। मन्दिर के चबूतरे पर या किसी कोने में बैठकर कुछ समय जप-ध्यान करके तब कहीं जाना।'' उनका यह उपदेश अभी भी मेरे मन में ज्वलन्त रूप से विद्यमान है।

प्रतिदिन रिक्शा करके वे मुझे विभिन्न मन्दिरों का दर्शन कराने ले जाया करते थे – केदारनाथ, संकटमोचन, दुर्गामन्दिर, त्रैलंगस्वामी मन्दिर, वीरेश्वर शिव, मणिकर्णिका घाट और वेणीमाधव का ध्वज। उन्होंने मुझसे कहा कि श्रीमाँ इस मन्दिर के शिखर पर चढ़ी थीं। उन्होंने मुझे कालभैरव का भी दर्शन करवाया था। वे जहाँ भी ले जाते, उस मन्दिर का महत्त्व और इतिहास बताया करते थे। संन्यासियों के साथ देव-देवी का दर्शन वास्तव में सार्थक होता है।

परवर्तीकाल में मुझे ज्ञात हुआ कि हरिप्रेम महाराज श्रीमाँ और राधू को लेकर बाँकुड़ा गये थे। वहाँ पर श्रीमाँ के शिष्य स्वामी महेश्वरानन्द जी (वैकुण्ठ महाराज) डॉक्टर थे। श्रीमाँ अस्वस्थ राधू को दिखाने ले गयी थीं। तदुपरान्त एक दिन सन्ध्या समय श्रीमाँ के पैर में वात निवारण हेतु तेल मालिश करते समय हरिप्रेमानन्द महाराज ने देवी जगद्धात्री के रूप में श्रीमाँ का दर्शन किया था। १९७१ ई. में छिहत्तर वर्ष की उम्र में वाराणसी में उन्होंने शरीर-त्याग किया।

स्वामी महेश्वरानन्द जी महाराज (१८९०-१९७३) का अद्वैत आश्रम, कोलकाता में दर्शन किया हूँ। उस समय उनसे कोई वार्तालाप नहीं हुआ था। उनके सम्बन्ध में केवल दो कहानियाँ सुनी थी। श्रीमाँ उस समय कोआलपाड़ा में पेचिश की बीमारी से पीड़ित थीं। वैकुण्ठ महाराज श्रीमाँ

की चिकित्सा करने के लिए आये थे। वे एलोपैथिक डॉक्टर होने के बावजूद भी होमियोपैथिक की चिकित्सा करते थे। वे जब श्रीमाँ की जीभ में होमियोपैथिक दवा की बूँद डालने गये, तब उसी समय उन्होंने श्रीमाँ को एक देवीमूर्ति के रूप में दर्शन किया। वे आश्चर्यचकित रह गये। श्रीमाँ उनको आवाज दे रही हैं, ''ओ वैकुण्ठ, मुझे दवा दो।'' वे निरुत्तर थे। तत्पश्चात् दवा की शीशी में से पाउडर-चीनी में दवा की बूँद देकर श्रीमाँ को खाने के लिए दिए।

स्वामी महेश्वरानन्द जी महाराज

दूसरी बात सुनी थी। श्रीमाँ के शरीर-त्याग के पश्चात् शोभायात्रा के समय वे बागबाजार से वराहनगर के कुठीघाट तक श्रीमाँ के मुँह के ऊपर छाता लगाए हुए थे, जिससे मुँह के ऊपर धूप न लगे। मुझे स्पष्ट स्मरण है कि वे अच्छे लम्बे और पतले थे। धन्य इन सबका साधु जीवन था ! उनलोगों ने श्रीमाँ की कृपा पाकर मनुष्य की सेवा में स्वयं को मिटा दिया है। १९७३ ई. में तिरासी वर्ष की उम्र में उन्होंने वाराणसी सेवाश्रम में शरीर-त्याग किया। **(क्रमशः)**

काको निन्दौं काको बन्दौं

स्वामी अद्वैतानन्द जी महाराज (१९२८ से २८ दिसम्बर, १९०९) रामकृष्ण संघ में 'बुढ़े गोपाल' के नाम से जाने जाते हैं। गोपाल दादा अपने स्वभाव के अनुसार सभी कार्य सुव्यवस्थित, नियमित और स्वच्छता से करते थे।

१९९८ में बेलूड़ मठ की जमीन खरीदी गयी। मठ की जमीन पर नाव तथा जहाजों की मरम्मत होती थी, जिससे वह बहुत उबड़-खाबड़ था। गोपाल दादा ने मजदूरों की सहायता से उस जमीन को समतल किया। मठ बन जाने पर भी उस समय दैनन्दिन आवश्यक वस्तुओं का अत्यन्त अभाव था।

स्वामी अद्वैतानन्द जी महाराज

शरीर में वात रोग होने पर भी वे मठ की आवश्यकता को देखते हुए बगीचा में बहुत परिश्रम किया करते थे। भिण्डी, बैगन, कच्चा केला आदि जो कुछ भी मठभूमि में उगाना सम्भव होता, वे लगाते थे जिससे प्रायः सब्जी खरीदनी नहीं पड़ती थी, बल्कि बीच-बीच में श्रीमाँ के पास भी भेज दिया जाता था। श्रीमाँ ने उनकी निष्ठा की बहुत प्रशंसा की थीं। उनके प्रयास से मठ का बगीचा उन दिनों पूजा के लिए फूल तथा नैवैद्य हेतु फल एवं सब्जियों से परिपूर्ण रहता था।

नवागत ब्रह्मचारियों को सब्जी बागान, गोसेवा इत्यादि कार्य गोपाल दादा के साथ करना पड़ता था, परन्तु यह आधुनिक पीढ़ी विद्यालय-महाविद्यालय से अध्ययन की हुई थी और इसके साथ-ही-साथ इन सब कार्यों में अनभ्यस्त भी थी। युवा पीढ़ी और गोपाल दादा के बीच इन सब कार्यों को लेकर कुछ-न-कुछ खटपट होती रहती थी। इसके फलस्वरूप कभी-कभी गोपाल दादा क्षुब्ध हो जाते और नवागत ब्रह्मचारियों को आड़े हाथों लेते।

लेकिन एक दिन की घटना के बाद उनका ब्रह्मचारियों के ऊपर क्षुब्ध होने का भाव पूरी तरह से चला गया। घटना ऐसी हुई कि ठाकुर ने उन्हें एक दिन दर्शन देकर दिखाया कि सर्वभूतों में वे स्वयं ही विराजमान हैं। इस दर्शन के बाद से वे कहा करते थे, ''सर्वभूतों में वे ही विराजमान हैं। किसकी निन्दा करूँ और किसकी आलोचना करूँ?'' यह ठाकुर का संसार है और ये सभी ठाकुर की ही सन्तान हैं – इसी मनोभाव के साथ उन्होंने अपने जीवन का शेष भाग व्यतीत किया था। 'सर्वभूतों में वे ही विराजमान हैं' उनकी यह वाणी हम सभी के लिए सदा अनुकरणीय है। ○○○

स्वामी शिवमयानन्द जी महाराज ब्रह्मलीन हुये

रामकृष्ण मठ और रामकृष्ण मिशन के वरिष्ठ न्यासी और सह-संघाध्यक्ष स्वामी शिवमयानन्द जी महाराज ११ जून, २०२१ को ९ बजे रात में सेवा प्रतिष्ठान, कोलकाता में ब्रह्मलीन हो गये।

स्वामी शिवमयानन्द जी महाराज का जन्म बिहार के सुपोल शहर में, जो कि अब जिला है, में २० दिसम्बर, १९३४ को हुआ था। वे स्वामी विशुद्धानन्द जी महाराज के दीक्षित शिष्य थे। वे १९५९ में रामकृष्ण संघ से बेलूड़ मठ में ही सम्मिलित हुए। उन्हें १९६९ में स्वामी वीरेश्वरानन्द जी महाराज से संन्यास दीक्षा प्राप्त हुई।

उन्होंने रामकृष्ण संघ में सहायक के रूप में बेलूड़ मठ, रामकृष्ण मिशन आश्रम, सारगाछी, रामकृष्ण मिशन आश्रम, कटिहार, बिहार, रामकृष्ण मिशन व्वायज होम, राहड़ा, कोलकाता, रामकृष्ण मिशन, सेवा प्रतिष्ठान, कोलकाता और रामकृष्ण मिशन, सारदापीठ, बेलूड़ मठ, हावड़ा में सेवा की। बाद में वे रामकृष्ण मिशन, सारदापीठ, बेलूड़ मठ, हावड़ा, स्वामी विवेकानन्द एन्सेस्ट्रल हाउस एन्ड कल्चरल सेन्टर, कोलकाता और रामकृष्ण मठ, काशीपुर के अध्यक्ष रहे। पूज्य महाराजजी सारगाछी रामकृष्ण मिशन आश्रम, सारगाछी हाई स्कूल के प्रधानाचार्य थे और विवेकानन्द सेन्टेनरी कॉलेज, राहड़ा और विद्यामन्दिर कॉलेज, सारदापीठ के प्राचार्य थे।

१९९० में महाराजजी रामकृष्ण मठ और रामकृष्ण मिशन के न्यासी रामकृष्ण मिशन संचालन समिति के सदस्य निर्वाचित हुए। १९९२ में वे रामकृष्ण मठ-मिशन के सह-महासचिव निर्वाचित हुए, जिस दायित्व का उन्होंने यथाशक्ति १३ वर्षों तक निर्वाह किया। इसके अतिरिक्त उन्होंने रामकृष्ण-विवेकानन्द भाव-प्रचार परिषद के संयोजक के रूप में लगभग दो दशक तक सेवाएँ दीं। विभिन्न समयों पर महाराज ने कई बार राहत कार्य में भी सक्रिय भाग लिया।

जब महाराजजी राहत-कार्य के प्रभारी थे, तब २०१६ से महाराज ने भक्तों को मन्त्र-दीक्षा देना प्रारम्भ किया। उसी वर्ष में रामकृष्ण मठ-मिशन के सह-संघाध्यक्ष भी निर्वाचित हुए। उसके बाद से वे रामकृष्ण मठ, काकुड़गाछी में ही रहते थे। मात्र दो महीने पहले अप्रैल, २०२१ में महाराज सह-संघाध्यक्ष के गुरुतर भार का निर्वहण करते हुए भी रामकृष्ण मठ, काशीपुर के अध्यक्ष नियुक्त हुए थे और वहीं निवास कर रहे थे। अपने आध्यात्मिक जीवन में उन्होंने देश के विभिन्न स्थानों के बहुत से भक्तों को मन्त्र-दीक्षा प्रदान कर धन्य किया।

महाराज अच्छे तैराक भी थे। बेलूड़ मठ में गंगाजी में तैरते हुए उन्हें देखा जाता था। एक बार एक संन्यासी ने पूछा, महाराज जब आप बी.एच.यू में पढ़ते थे, तब गंगाजी को कभी तैरकर पार किये थे क्या? उन्होंने कहा, किया हूँ।

महाराजजी जप-पारायण थे। यहाँ तक कि वे जब कार्यक्रम में मंच पर रहते थे, तब भी आँखें बन्द करके जप करते रहते थे। जब उनके व्याख्यान का समय आता था, तब जाकर बोलते थे।

उनके ब्रह्मलीन होने की सूचना से पूरा देश शोकमग्न हो गया। पश्चिम बंगाल के राज्यपाल श्री जगदीश धनखर और पश्चिम बंगाल की मुख्यमन्त्री ममता बनर्जी ने शोक-सन्देश प्रेषित किया।

महाराजजी सरल, स्पष्टवादी, दृढ़निश्चयी और प्रसन्नचेत्ता थे। वे तपस्वी, विनम्र, दयालु और निडर थे और अपने सम्पर्क में आनेवालों को सदा उत्साहित करते थे। वे अपने भक्तों के हृदय में सदा विराजित रहकर उन्हें प्रेरणा देते रहेंगे।

उत्तरप्रदेश

रामकृष्ण मिशन सेवाश्रम, लखनऊ १ अप्रैल से ९३ बिस्तरवाले वार्ड का संचालन कोविद मरीजों की सेवार्थ कर रहा है। १ मई को ऑक्सीजन प्लांट की स्थापना हुई। लखनऊ एवं आसपास के क्षेत्रों के कोविड मरीजों को अन्य चिकित्सीय सेवाएँ नि:शुल्क प्रदान करवाई जा रही हैं।

रामकृष्ण मिशन होम ऑफ सर्विस, वाराणसी द्वारा ४८ बिस्तरवाले कोविड वार्ड का संचालन, मरीजों की सेवा के लिए किया जा रहा है। टीकाकरण केन्द्र का संचालन भी हो रहा है, जहाँ २२ मई तक १२४८ लोगों का टीकाकरण हुआ।

रामकृष्ण मठ और रामकृष्ण मिशन सेवाश्रम, वृन्दावन ने चिकित्सालय में १६० बिस्तर कोविड मरीजों के लिए सुरक्षित किया है। २ अप्रैल से २४ मई तक कुल ४२२ रोगी चिकित्सालय में भर्ती किये गये एवं १४७७ रोगियों की ओपीडी में चिकित्सा हुई। चिकित्सालय द्वारा टीकाकरण केन्द्र का संचालन भी किया जा रहा है, जहाँ १८४५ लोगों का टीकाकरण हो चुका है।

उत्तराखण्ड

रामकृष्ण मिशन आश्रम, देहरादून आश्रम के नेत्र चिकित्सालय को ३३ बिस्तरवाले कोविड केयर केन्द्र में परिवर्तित किया गया है एवं एक टीकाकरण केन्द्र भी संचालित किया जा रहा है। इसके अतिरिक्त रूद्रप्रयाग जिले के अगस्त्यमुनि शहर में २७ बिस्तरवाले कोविड केयर केन्द्र के संचालन में भी आश्रम सहयोग प्रदान कर रहा है। केन्द्र ने यमुनोत्री एवं देहरादून के ३८० परिवारों में ३८००० किलो चावल, ३८००० किलो आटा, ७६० किलो दाल, ३८० किलो नमक, १९०० किलो चीनी, ९५ किग्रा सोयाबिन, ७६० लीटर मीठा तेल, १५२ किलो मसाले, ९५ किलो दूध पाउडर, ११४ किलो चायपत्ती, ७६० साबुन, ३८० धुलाई साबुन, ३८० सर्फ पाउडर, ३८० टूथब्रश, ३८० ट्यूब टूथपेस्ट, ३८ लीटर हैंड सेनेटाइजर, २२८० फेस मास्क एवं अन्य आवश्यक दवाइयों का वितरण किया।

रामकृष्ण मठ और रामकृष्ण मिशन सेवाश्रम, कनखल सेवाश्रम द्वारा १५० बिस्तर के कोविड चिकित्सा केन्द्र का संचालन किया जा रहा है, २३ अप्रैल से १० मई तक यहाँ ११५० मरीजों का सफल इलाज किया गया। इसके अतिरिक्त सेवाश्रम द्वारा संचालित टीकाकरण केन्द्र में कुल ३५०० टीकाकरण हो चुका है।

अद्वैत आश्रम, मायावती द्वारा जिला प्रशासन को आपातकालीन स्थिति हेतु केन्द्र के चिकित्सालय में बिस्तर उपलब्ध कराये गये हैं एवं ७ ऑक्सीजन सिलेन्डर भी प्रदान किये गये।

झारखण्ड

रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द सोसायटी, जमशेदपुर ने १७ मई को सिट्टगोड़ा में टीका केन्द्र आरम्भ किया। प्रतिदिन लगभग १००० लोगों का टीकाकरण हो रहा है।

रामकृष्ण मिशन आश्रम, मोराबादी, राँची ने टीकाकरण केन्द्र आरम्भ किया, जिसमें १५ से १९ मई तक २२२ लोगों का टीकाकरण हुआ। टेलीमेडिसिन सेवा एवं जागरुकता अभियान भी चलाया जा रहा है।

महाराष्ट्र

रामकृष्ण मठ और रामकृष्ण मिशन, मुम्बई के चिकित्सालय में ५१ कोविड मरीजों का इलाज किया गया, यहाँ पर निम्नांकित सेवाएँ प्रदान की जा रही हैं – (१) नि:शुल्क कोविड टेस्टिंग सेवा जहाँ प्रतिदिन ७५ मरीजों की टेस्टिंग की जाती है। (२) नि:शुल्क टीकाकरण केन्द्र जिसमें ११ से २४ मई तक ८४२ टीकाकरण हुआ।